द लिविंग आर्काइव · एक-वाक्य अध्ययन, अंक 02

युवाल नोआ हरारी · सेपिएंस, अध्याय 2 और 6

काल्पनिक व्यवस्था

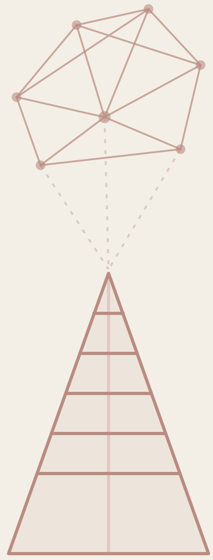

यह दावा कि समाज की कोई भी चीज़ असल में नहीं है — एक-एक मान्यता खोलकर, सबसे सीधी-सादी भाषा में।

> “ब्रह्मांड में न कोई ईश्वर है, न कोई राष्ट्र, न पैसा, न मानवाधिकार, न कानून और न न्याय — इनमें से कुछ भी इंसानों की साझा कल्पना के बाहर मौजूद नहीं है।”
>
> *“There are no gods in the universe, no nations, no money, no human rights, no laws, and no justice outside the common imagination of human beings.”*
>
> सेपिएंस: ए ब्रीफ़ हिस्ट्री ऑफ़ ह्यूमनकाइंड, 2011

01 बारह छिपी हुई मान्यताएँ — एक-एक करके बाहर निकालकर परखी गई

02 हरारी का पक्ष सबसे मज़बूत रूप में — और फिर उससे भी मज़बूत

03 वह एक शब्द जो पूरा बोझ उठा रहा है, और उसके नीचे दबी श्रेणी की गलती

04 याप, आयरलैंड, ज़िम्बाब्वे, यूगोस्लाविया, सैलोमन, नूरेम्बर्ग

लवप्रीत सिंह · misterlove.in

शोध-टिप्पणी · अगस्त 2026

शुरू करने से पहले

इस दस्तावेज़ को कैसे पढ़ें

यहाँ सब कुछ छोटे और सीधे वाक्यों में लिखा गया है। कोई भी भारी शब्द बिना उसी जगह समझाए इस्तेमाल नहीं हुआ है। अगर आप अख़बार पढ़ लेते हैं, तो यह भी पढ़ लेंगे।

यह पूरी किताब की समीक्षा नहीं है। यह सेपिएंस का सारांश भी नहीं है। यह **सिर्फ़ एक वाक्य** का अध्ययन है — एक वाक्य, जिसे तब तक खोला गया है जब तक उसके अंदर कुछ भी छिपा हुआ न बचे।

वाक्य यह है: **"ब्रह्मांड में न कोई ईश्वर है, न कोई राष्ट्र, न पैसा, न मानवाधिकार, न कानून और न न्याय — इनमें से कुछ भी इंसानों की साझा कल्पना के बाहर मौजूद नहीं है।"** हरारी ने जितना कुछ लिखा है, उसमें शायद यही पंक्ति सबसे ज़्यादा दोहराई जाती है। यह बोर्डरूम में दोहराई जाती है, पॉडकास्ट में, छात्रों के निबंधों में और राजनीति की बहसों में — आमतौर पर छोटे रूप में: **पैसा तो बस एक कहानी है, जो हम एक-दूसरे को सुनाते हैं।**

सुनने में यह सीधा लगता है। है नहीं। इसके अंदर करीब बारह अलग-अलग मान्यताएँ दबी हुई हैं। वाक्य के काम करने के लिए हर एक का सही होना ज़रूरी है। ज़्यादातर पाठक बिना ध्यान दिए बारहों को एक साथ निगल जाते हैं। यह दस्तावेज़ हर मान्यता को अलग निकालता है, रोशनी में रखता है, और पूछता है: क्या यह सच है?

फिर यह उससे भी कठिन काम करता है। यह हरारी के तर्क का **सबसे मज़बूत संभव रूप** तैयार करता है — उस रूप से भी मज़बूत जो उन्होंने खुद लिखा है। इसे **स्टीलमैन** कहते हैं (यह स्ट्रॉमैन का उल्टा है — स्ट्रॉमैन में आप किसी के विचार का कमज़ोर, नकली रूप बनाकर उस पर हमला करते हैं)। फिर उस मज़बूत रूप को और मज़बूत किया जाता है। तर्क जब अपने बेहतरीन हाल में पहुँच जाता है, तभी उस पर हमला होता है।

चार बक्से जो बार-बार दिखेंगे

एक लाइन में — पूरी बात, एक ही वाक्य में।

आसान भाषा में — वही बात, रोज़मर्रा के उदाहरण के साथ।

स्टीलमैन — तर्क के पक्ष में सबसे अच्छी दलील।

यहाँ दरार है — ईमानदार कमज़ोरियाँ, वे भी जिन्हें किताब के प्रशंसक आमतौर पर छोड़ जाते हैं।

ईमानदारी को लेकर एक चेतावनी। यह दस्तावेज़ आपकी जगह फ़ैसला नहीं करता। अंत तक पहुँचकर आप पाएँगे कि हरारी के दावे का एक हिस्सा पक्का, ठोस और उबाऊ हद तक सच है और सौ साल से जाना-माना है; एक हिस्सा दर्शनशास्त्र की एक गंभीर स्थिति है, जिसे वे किसी खोज की तरह पेश करते हैं; और एक हिस्सा शब्दों की हेराफेरी है। तीनों हिस्सों पर लेबल लगाया गया है।

एक आख़िरी बात, और यही सबसे ज़रूरी है। हरारी का पूरा वाक्य एक शब्द पर टिका है: **कल्पना**। किताब में बाकी जगह वे इन्हीं चीज़ों को **कल्पना की कहानियाँ** (fictions) कहते हैं। आम भाषा में कल्पना की कहानी वह होती है जो सच नहीं होती — शेरलॉक होम्स, परी की कहानी, फ़ॉर्म पर लिखा गया झूठ। लेकिन हरारी की सूची वाली चीज़ें इस तरह झूठी नहीं हैं। आपके हाथ में पकड़ा दस का नोट वाकई चाय दिला देता है। यही फ़ासला — "लोगों पर टिका हैं" और "सच नहीं हैं" के बीच का फ़ासला — वह जगह है जहाँ इस वाक्य पर होने वाली लगभग हर बहस असल में होती है। इसे नज़र में रखिए, और पूरी बहस साफ़ पढ़ी जाने लगेगी।

विषय-सूची

एक वाक्य का अध्ययन, दस भागों में

00 वाक्य खुद, और वह असल में कहता क्या है — ठीक-ठीक शब्द

01 दावे के भीतर छिपी बारह मान्यताएँ — बोझ उठाने वाली दीवारें

02 हरारी ने यह कहा क्यों — मक़सद, वंशावली और लंबा खेल — दुर्खीम से एंडरसन तक

03 स्टीलमैन, पहला स्तर: सबसे मज़बूत ईमानदार दलील — पैसा, सरहदें, कंपनियाँ

04 स्टीलमैन, दूसरा स्तर: वह तर्क जो हर हमले से बच जाता है — बोझ उठाने वाली कल्पना

05 यहाँ दरार है — श्रेणी की गलती और गायब तीसरा बक्सा — विश्वास ≠ चलन

06 हर विषय-क्षेत्र इस पर क्या कहता है — अठारह फ़ैसले

07 तर्क की परीक्षा, छह असली घटनाओं पर — जब कल्पना बंद हुई

08 वह काल्पनिक व्यवस्था जिसमें आप इस वक़्त खड़े हैं — काम आने वाला औज़ार

09 अंकतालिका, और वाक्य का नया रूप — बारह फ़ैसले

— परिशिष्ट: शब्दावली, समय-रेखा और स्रोत — सब कुछ, समझाया हुआ

अगर और कुछ न पढ़ें, तो यह पढ़ लें

हरारी इस बात में सही हैं कि पैसा, राष्ट्र, कानून और अधिकार सिर्फ़ इसलिए मौजूद हैं क्योंकि पर्याप्त लोग उन्हें मौजूद मानकर बरतते हैं। वे इस बात में गलत हैं कि इससे ये चीज़ें कल्पना बन जाती हैं। “पत्थर” और “परी” के बीच एक तीसरी श्रेणी भी है — उन चीज़ों की श्रेणी जो आपसी सहमति से असली बनती हैं और उसके बाद पूरी तरह, जाँच-योग्य ढंग से वस्तुपरक हो जाती हैं। पिछले एक सौ तीस साल में इस विषय पर सोचने वाले हर गंभीर व्यक्ति के पास उस तीसरे बक्से का कोई न कोई नाम रहा है। हरारी का वाक्य उसी बक्से को गायब करके काम करता है।

भाग 00

वाक्य खुद, और वह असल में कहता क्या है

किसी दावे पर फ़ैसला देने से पहले यह जानना ज़रूरी है कि दावा ठीक-ठीक किया क्या गया था। इस वाक्य को लेकर होने वाली ज़्यादातर लड़ाइयाँ असल में एक ऐसे शब्द को लेकर हैं जिसकी परिभाषा किसी ने रुककर तय ही नहीं की।

वाक्य किताब में कहाँ है

यह पंक्ति किताब में जल्दी आ जाती है — **सेपिएंस** के अध्याय 2, "द ट्री ऑफ़ नॉलेज" में, अंग्रेज़ी के मानक संस्करण के करीब पेज 31 पर। यह बात मायने रखती है, क्योंकि किताब के उस मोड़ तक हरारी ने वह ढाँचा खड़ा ही नहीं किया है जो इस दावे को बचा सके। वह ढाँचा वे चार अध्याय बाद बनाते हैं — अध्याय 6, "बिल्डिंग पिरामिड्स" में, जहाँ वे **काल्पनिक व्यवस्था** (imagined order) का विचार पेश करते हैं और, सबसे अहम बात, वस्तुपरक, व्यक्तिपरक और अंतर-व्यक्तिपरक — इन तीन के बीच फ़र्क़ खींचते हैं।

तो मशहूर वाक्य असल में ट्रेलर है। फ़िल्म अध्याय 6 है। ट्रेलर लगभग सबने देख लिया है। फ़िल्म पूरी बैठकर देखने वाले काफ़ी कम हैं। यह दस्तावेज़ दोनों के बारे में है, क्योंकि दोनों के बीच का फ़ासला ही पूरी कहानी है: **वाक्य में दो बक्से हैं, और अध्याय में तीन।**

ठीक-ठीक शब्द, धीरे-धीरे

> वह वाक्य
>
> "ब्रह्मांड में न कोई ईश्वर है, न कोई राष्ट्र, न पैसा, न मानवाधिकार, न कानून और न न्याय — इनमें से कुछ भी इंसानों की साझा कल्पना के बाहर मौजूद नहीं है।"
>
> *"There are no gods in the universe, no nations, no money, no human rights, no laws, and no justice outside the common imagination of human beings."*

यहाँ छह चीज़ें गिनाई गई हैं। ये छहों एक ही किस्म की नहीं हैं, और पाठक से चुपचाप यह मनवाया जा रहा है कि हैं। इन्हें अलग-अलग देखिए:

- **ईश्वर।** ईश्वर है या नहीं — यह ब्रह्मांड के बारे में किया गया दावा है। आस्तिक कहता है कि ईश्वर है, चाहे कोई माने या न माने। उसकी आस्था की पूरी बात ही यही है।
- **राष्ट्र।** राष्ट्र बहुत बड़े लोगों का समूह है जो एक-दूसरे को अपना साथी सदस्य मानकर बरतते हैं। कोई यह दावा नहीं करता कि लोगों के बिना भी राष्ट्र बना रहेगा।
- **पैसा।** वह चीज़ जिसे लोग दूसरी चीज़ों के बदले स्वीकार कर लेते हैं। उसका पूरा काम ही स्वीकार किया जाना है।
- **मानवाधिकार।** ये दावे हैं कि किसी इंसान के साथ क्या नहीं किया जा सकता। कुछ लोग मानते हैं कि ये खोजे गए हैं; कुछ मानते हैं कि घोषित किए गए हैं।
- **कानून।** किसी सत्ता द्वारा बनाए गए नियम, जिन्हें सज़ा के ज़रिए लागू किया जाता है।
- **न्याय।** यह तय करने का पैमाना कि कोई व्यवस्था सही है या नहीं।

अब वाक्य का दूसरा हिस्सा: इंसानों की साझा कल्पना के बाहर। यही वह कसौटी है जो लगाई जा रही है। यह कहती है: अगर ब्रह्मांड से सारे इंसानी दिमाग हटा दिए जाएँ, तो क्या यह चीज़ फिर भी वहाँ रहेगी? पहाड़ के लिए — हाँ। रुपये के लिए — नहीं। हरारी छहों चीज़ों को “नहीं” वाली तरफ़ रखते हैं और निष्कर्ष निकालते हैं कि इसलिए ये चीज़ें हैं ही नहीं।

आसान भाषा में

कल्पना कीजिए कि आज रात हर इंसान गायब हो जाए। कल हिमालय वहीं होगा। प्रशांत महासागर वहीं होगा। लेकिन न भारत होगा, न रुपया, न संयुक्त राष्ट्र, न चोरी के ख़िलाफ़ कोई कानून, और न ही कोई ऐसा बचेगा जिसके साथ अन्याय हो सके। हरारी की बात यह है कि दूसरी सूची कभी हमारे अंदर के सिवा कहीं थी ही नहीं। इस बात पर कोई विवाद नहीं है। विवाद इस पर है कि वे इस बात का आगे करते क्या हैं।

तीन बक्से, और वाक्य में सिर्फ़ दो क्यों हैं

अध्याय 6 में हरारी चीज़ों को तीन किस्मों में बाँटते हैं। इसे ध्यान से रखना ज़रूरी है, क्योंकि यह उस अध्याय की सबसे मज़बूत चीज़ है — और इस दस्तावेज़ के कवर पर छपा वाक्य इसी का खंडन करता है।

किस्म	यह किस पर टिकी है	उदाहरण
वस्तुपरक objective	किसी पर नहीं। यह मौजूद है, चाहे किसी को पता हो या न हो।	रेडियोधर्मिता। गुरुत्वाकर्षण। प्रशांत महासागर।
व्यक्तिपरक subjective	एक इंसान के दिमाग पर। वह इंसान रुका, तो यह भी रुक गई।	आपका सिरदर्द। कुत्तों से आपका डर। बच्चे का काल्पनिक दोस्त।
अंतर-व्यक्तिपरक inter-subjective	बहुत सारे दिमागों के जाल पर। एक आदमी के हटने से कुछ नहीं बदलता। सबके हटने से यह ख़त्म हो जाती है।	पैसा। राष्ट्र। कानून। कंपनियाँ। मानवाधिकार।

वह तीसरा बक्सा एक आम पाठक की किताब में रख देना असल में बौद्धिक उपलब्धि है, और इसका श्रेय हरारी को मिलना चाहिए। और ठीक यही चीज़ है जिसे मशहूर वाक्य मिटा देता है। वाक्य कहता है कि छहों चीज़ें “कल्पना के सिवा कहीं नहीं” हैं — यानी उन्हें **व्यक्तिपरक** के खाने में डाल देता है, काल्पनिक-दोस्त वाले बक्से में। जबकि अध्याय कहता है कि ये **अंतर-व्यक्तिपरक** हैं — यह बिल्कुल अलग बक्सा है, जिसके गुण भी बिल्कुल अलग हैं।

फ़र्क़ एक ही उदाहरण में

आप अपने काल्पनिक दोस्त पर यक़ीन करना छोड़ दें, तो काल्पनिक दोस्त ख़त्म। आप रुपये पर यक़ीन करना छोड़ दें, तो आप भूखे रह जाएँगे। यही असमानता पूरा खेल है। व्यक्तिपरक चीज़ें आपकी बात मानती हैं। अंतर-व्यक्तिपरक चीज़ें नहीं मानतीं।

एक ही कोट में चार अलग-अलग दावे

वाक्य को खोलिए तो पता चलता है कि वह एक साथ कम से कम चार अलग काम कर रहा है। सार्वजनिक बहस में इस पर होने वाली लगभग सारी उलझन इसी से आती है कि लोग इनमें से किसी एक का जवाब देते हैं जबकि कहने वाले का मतलब कोई और था।

1. **एक नास्तिक दावा।** कोई ईश्वर नहीं है। यह ब्रह्मांड में क्या-क्या है, इस बारे में किया गया दावा है। यह अपने बल पर खड़ा या गिरता है और पैसे से इसका कोई लेना-देना नहीं।
2. **एक बनावट का दावा।** पैसा, राष्ट्र और कंपनियाँ सामूहिक स्वीकृति से बनी हैं। स्वीकृति हटा लीजिए, पीछे कुछ नहीं बचता। यह लगभग निश्चित रूप से सच है और ज़रा भी नया नहीं है।
3. **एक नैतिक दावा।** मानवाधिकार और न्याय दुनिया के बारे में खोजे गए तथ्य नहीं हैं; ये हमारे गढ़े हुए हैं। दर्शनशास्त्र में यह एक ज़िंदा, सम्मानित और ज़ोरदार विवाद वाली स्थिति है — इतिहास से निकला हुआ नतीजा नहीं।
4. **एक शब्दजाल का दावा।** ऊपर की चारों बातें एक ही डिब्बे में जाती हैं, और उस डिब्बे का नाम है कल्पना। यही हिस्सा भावनात्मक असर पैदा करता है, और यही हिस्सा सबसे कम सबूत पर टिका है।

> **एक लाइन में**
>
> हरारी का वाक्य एक सच्चा अवलोकन, एक विवादित दार्शनिक स्थिति, एक साधारण नास्तिकता और एक शब्द-हेराफेरी है — चारों को एक कॉमा से बाँध दिया गया है।

क्या नहीं कहा जा रहा है

दो गलतफ़हमियाँ अभी साफ़ कर लेनी चाहिए, क्योंकि इन पर बेहिसाब बहस बर्बाद होती है।

वे यह नहीं कह रहे कि पैसा काम नहीं करता। हरारी साफ़-साफ़ कहते हैं कि ये चीज़ें बेहद ताक़तवर हैं — उनके हिसाब से ज़्यादातर भौतिक तथ्यों से भी ज़्यादा ताक़तवर। वे पैसे को अब तक की सबसे कामयाब कहानी कहते हैं। जो कोई जवाब में कहे "लेकिन कल तो मैंने इससे सैंडविच ख़रीदा था", उसने तर्क को छुआ तक नहीं है।

वे यह भी नहीं कह रहे कि किसी ने बैठकर ये चीज़ें ईजाद कीं। कुछ काल्पनिक व्यवस्थाएँ सोच-समझकर बनाई गई थीं। ज़्यादातर नहीं। हरारी यह जानते हैं। जो आलोचक उन पर संस्थाओं की साज़िश-थ्योरी गढ़ने का आरोप लगाते हैं, वे गलत किताब पर हमला कर रहे हैं — हालाँकि, जैसा भाग 05 में दिखेगा, वकीलों को "जादूगर" बताने वाली उनकी अपनी उपमा इसी गलतफ़हमी को न्योता देती है।

6
चीज़ें वाक्य में गिनाई गईं, कम से कम तीन अलग किस्मों की

3
बक्से खुद हरारी की व्यवस्था में, जिनमें से एक को वाक्य छोड़ देता है

1
शब्द — "कल्पना" — जो पूरा तर्क अकेले उठाए हुए है

भाग 01

दावे के भीतर छिपी बारह मान्यताएँ

मान्यता वह चीज़ है जिसे आपको तर्क शुरू करने से पहले ही मान लेना पड़ता है। यह वह फ़र्श है जिस पर आप खड़े होते हैं। हरारी का एक वाक्य बारह फ़र्शों पर खड़ा है। कुछ ठोस पत्थर के हैं। कुछ रंगे हुए कपड़े के।

मान्यता 1 चीज़ें सिर्फ़ दो तरह की होती हैं: जो दिमाग़ से स्वतंत्र हैं, और जो गढ़ी हुई हैं

> **एक लाइन में**
>
> हर चीज़ या तो हमारे बिना भी वहाँ मौजूद है, या हमारी गढ़ी हुई है — तीसरा कोई विकल्प नहीं।

यही नींव का पत्थर है। इसके बिना पूरा वाक्य पहले ही सेकंड में गिर जाता है, क्योंकि तब छहों चीज़ें सीधे तीसरे बक्से में चली जातीं और उनमें कोई सनसनी बचती ही नहीं।

दो-बक्सों वाली तस्वीर बहुत पुरानी और बहुत स्वाभाविक लगती है। पत्थर असली हैं। ड्रैगन गढ़े हुए हैं। दुनिया को इसी हिसाब से छाँट लीजिए। हरारी का वाक्य सामाजिक जीवन की छह सबसे अहम चीज़ों को उठाकर, बड़े अंदाज़ से, ड्रैगन वाले बक्से में डाल देता है।

> **आसान भाषा में**
>
> पूछिए कि शतरंज का ऊँट सीधा चल सकता है या नहीं। जवाब है — नहीं। यह राय का मामला नहीं है, और आप कितना भी ज़ोर से महसूस करें, इसे सच नहीं बना सकते। फिर भी शतरंज पूरी तरह इंसानों का गढ़ा हुआ है। यानी "इंसानों का गढ़ा हुआ" और "इसका एक सही जवाब है" — ये दोनों एक-दूसरे के उलट नहीं हैं। दो-बक्सों वाली तस्वीर में शतरंज के लिए जगह ही नहीं है, और सामाजिक जीवन का बड़ा हिस्सा शतरंज ही है।

उन्हें यह क्यों चाहिए: दो-बक्सों वाली दुनिया के बिना "कोई राष्ट्र नहीं है" बदलकर "राष्ट्र तीसरे बक्से में हैं" हो जाता है, और इसे कोई पोस्टर पर नहीं छापेगा।

इसे क्या तोड़ सकता है: एक काम लायक तीसरी श्रेणी। वह मौजूद है, अच्छी तरह स्थापित है, और भाग 05 उसी पर है।

मान्यता 2 "क्या यह दिमागों के बिना भी बचेगी?" — यही सही कसौटी है कि कोई चीज़ है या नहीं

> **एक लाइन में**
>
> अगर लोगों के हटते ही वह गायब हो जाती है, तो वह कभी थी ही नहीं।

यह कसौटी सख़्त और वैज्ञानिक लगती है। पर ध्यान दीजिए कि यह और क्या-क्या मिटा देती है। दिमागों के गायब होने पर भाषा नहीं बचती। शायद सात की संख्या भी नहीं बचती। न वादा बचता है, न शादी, न किसी भाषा का व्याकरण, न शतरंज की कोई शुरुआती चाल, न कर्ज़, न

अनुवाद, और न ही “कसौटी” शब्द का मतलब। अगर यह कसौटी सब पर एक-सी लगाई जाए, तो इंसान जिन चीज़ों की परवाह करता है उनमें से लगभग सब कुछ कल्पना बन जाता है — और तब यह शब्द कोई काम ही नहीं करता।

मानवविज्ञानी सी. आर. हालपाइक (C. R. Hallpike) ने 2017 में किताब की समीक्षा करते हुए यह आपत्ति सीधे शब्दों में रखी: सच्चाई को भी हम देख, छू या सूँघ नहीं सकते, और इससे सच्चाई काल्पनिक नहीं हो जाती। **अभौतिक** और **अवास्तविक** एक शब्द नहीं हैं।

इसे क्या तोड़ सकता है: कोई भी ऐसा मामला जहाँ चीज़ साफ़ तौर पर दिमागों पर टिकी हो और उसका एक सही जवाब भी हो। ऐसे हज़ारों मामले हैं। हर खेल, हर भाषा, हर अनुबंध।

मान्यता 3 सूची की छहों चीज़ें एक ही किस्म की हैं

> **एक लाइन में**
>
> ईश्वर, राष्ट्र, पैसा, अधिकार, कानून और न्याय — सबको एक ही तर्क से निपटाया जा सकता है।

यह वाक्य की सबसे चुपचाप बैठी मान्यता है और शायद सबसे नुकसानदेह भी। सूची की दो चीज़ों को अगल-बगल रखिए:

- **पैसा।** अगर सब लोग रुपया लेना बंद कर दें, तो रुपया मौजूद रहना बंद कर देगा। यक़ीन पैसे के होने का **सबूत** नहीं है; यक़ीन ही वह चीज़ है जिससे पैसा **बना** है।
- **ईश्वर।** अगर सब लोग शिव पर यक़ीन करना छोड़ दें, तो आस्तिक यह नहीं कहता कि अब शिव नहीं रहे। आस्तिक का दावा ठीक यही है कि शिव के होने का यक़ीन से कोई संबंध ही नहीं है। यक़ीन से ईश्वर बना नहीं है; यक़ीन ब्रह्मांड के बारे में किए गए एक दावे पर दी गई प्रतिक्रिया है।

ये दोनों बिल्कुल उलटी बनावटें हैं। “हमारी कल्पना के बाहर कोई पैसा नहीं है” कहना पैसे के काम करने के तरीक़े का विवरण है, और हर अर्थशास्त्री सिर हिलाकर सहमति दे देगा। “हमारी कल्पना के बाहर कोई ईश्वर नहीं है” कहना ब्रह्मांड के बारे में किए गए एक दावे का खंडन है — यानी नास्तिकता। यह एक बचाव-योग्य स्थिति है, लेकिन बिल्कुल अलग किस्म का कथन है, जिसके लिए बिल्कुल अलग तर्क चाहिए।

> **यहाँ दरार है**
>
> सूची में ईश्वर को सबसे पहले रखने से पैसे वाले मामले की पक्की निश्चितता उलटी बहकर ईश्वर वाले मामले में पहुँच जाती है, और ईश्वर वाले मामले का भावनात्मक आवेश आगे बहकर अधिकारों वाले मामले तक। पाठक को लगता है कि एक तर्क दिया गया है। असल में तीन दावे ठोक दिए गए हैं।

इसे क्या तोड़ सकता है: तर्क के तौर पर यह पहले से टूटी हुई है; वाक्पटुता के तौर पर बची हुई है। इस वाक्य के ईमानदार रूप के लिए तीन वाक्य चाहिए होंगे, और तब यह कोट करने लायक नहीं रहेगा।

मान्यता 4 यक़ीन ही मशीनरी है — ये चीज़ें यक़ीन से चलती हैं

> **एक लाइन में**
>
> पैसे, कानून और राष्ट्रों को थामे रखने वाली चीज़ यह है कि लोग उन पर यक़ीन करते हैं।

आंशिक रूप से सच, और एक अहम मायने में अधूरी। सोचिए कि आपकी जेब का नोट आप असल में लेते क्यों हैं। हो सकता है आपको उस पर रत्ती भर भरोसा न हो। हो सकता है आप पूरे मौद्रिक तंत्र को धोखा मानते हों। फिर भी आप नोट लेंगे, दो ठोस वजहों से: आपका मकान-मालिक उसे लेगा, और सरकार उसे लेगी — बल्कि सरकार टैक्स में उसकी **माँग** करती है, और मना करने पर ताक़त इस्तेमाल करेगी। यह यक़ीन नहीं है। यह तालमेल की समस्या है, और साथ में बंदूक लिए खड़ा एक आदमी।

जर्मन अर्थशास्त्री गेओर्ग फ्रीड्रिष क्नाप (Georg Friedrich Knapp) ने यह बात 1905 में कही थी: पैसा कानून की पैदाइश है। किसी मुद्रा को टिकाने वाली चीज़ अक्सर यही होती है कि टैक्स उसी में चुकाना पड़ता है। बाकी आधी बात दार्शनिक डेविड लुईस (David Lewis) ने 1969 में रखी: चलन वह है जब हर आदमी कोई काम इसलिए करता है क्योंकि बाकी सब वही कर रहे हैं — और उस काम के बारे में किसी को कुछ भी मानने की ज़रूरत नहीं, सिवाय इसके कि बाकी लोग करते रहेंगे।

आसान भाषा में

ब्रिटेन में कोई भी बाईं तरफ़ गाड़ी चलाने पर **यक़ीन** नहीं करता। लोग बस चलाते हैं, क्योंकि बाकी सब चलाते हैं, और दाईं तरफ़ मुड़ना जानलेवा है। चलन निभाने के लिए आस्था नहीं चाहिए। बाकी लोग चाहिए, और नतीजे चाहिए।

इसे क्या तोड़ सकता है: यह पहले से ही सीमित हो चुकी है। यक़ीन धर्म और वैधता के लिए सबसे ज़्यादा मायने रखता है, मुद्रा और ट्रैफ़िक के लिए सबसे कम। हरारी सब पर एक ही शब्द चिपका देते हैं।

मान्यता 5 “कल्पना” और “काल्पनिक कहानी” — इन सबके लिए यही सही शब्द हैं

एक लाइन में

एक लिमिटेड कंपनी और एक कबीलाई आत्मा एक ही किस्म की चीज़ें हैं, और दोनों का नाम है — मिथक।

यह वह मान्यता है जिसे ज़्यादातर पाठक बिना ध्यान दिए सोख लेते हैं, क्योंकि यह तर्क की शक्ल में नहीं, शब्दावली की शक्ल में आती है। छपे हुए रूप में हालपाइक की आपत्ति सबसे तीखी है: हरारी **विश्वास** और **चलन** में फ़र्क़ नहीं कर पाते, ज़ाहिरा तौर पर इसलिए कि दोनों में से कोई भौतिक वस्तु नहीं है।

ये दोनों लगभग हर मामले में अलग हैं। किसी ने बैठकर तय नहीं किया कि आज से भूतों पर यक़ीन करना है; विश्वास अनुभव और विरासत में मिली सोच से उगते हैं, और मानने वाला उन्हें सच मानता है। चलन इसका उल्टा है: सोच-समझकर या धीरे-धीरे बना हुआ तालमेल, किसी काम के लिए अपनाया गया, जिसे कोई किसी चीज़ का विवरण नहीं मानता। यह नियम कि कंपनी अपने कर्ज़ के लिए खुद ज़िम्मेदार है — इस पर कोई उस तरह यक़ीन नहीं करता जिस तरह कोई मरने के बाद की ज़िंदगी पर करता है। यह एक औज़ार है, और इस्तेमाल करने वाला हर आदमी जानता है कि यह औज़ार है।

यहाँ दरार है

दिक़्क़त खुद हरारी के उदाहरण से दिख जाती है। वे उस वकील का वर्णन करते हैं जो प्यूज़ो को कंपनी बनाता है, मानो वह कोई जादूगर हो जो सजे हुए काग़ज़ पर मंत्र लिखकर अनुष्ठान कर रहा हो। यह शानदार बिंब है। और यह ठीक उल्टा भी है: वह अनुष्ठान इसलिए काम करता है **क्योंकि सबको पता है कि यह अनुष्ठान है**। जो जादू खुद ऐलान करके आए कि वह जादू है, और जिसका चलना इस पर टिका हो कि कोई धोखा न खाए — वह जादू नहीं है। वह एक प्रक्रिया है।

इसे क्या तोड़ सकता है: शब्द के चुनाव को कोई नहीं बचा सकता। जो बचाया जा सकता है वह नीचे का दावा है, बशर्ते "कल्पना" की जगह "चलन" रख दिया जाए — भाग 04 यही करता है।

मान्यता 6 जो कल्पना से बना है, वह किसी भी और तरह से भी बनाया जा सकता था

> **एक लाइन में**
>
> चूँकि हमने इसे गढ़ा है, यह मनमाना है, और कोई भी दूसरी व्यवस्था भी उतनी ही अच्छी चलती।

हरारी यह सीधे-सीधे नहीं कहते, और कई जगह इससे इनकार भी करते हैं। लेकिन वाक्य इसे साथ लेकर चलता है, और पाठक इसे बिना चूके साथ ले जाते हैं। अगर राष्ट्र कहानियाँ हैं, तो कल कोई बेहतर कहानी क्यों न सुना दी जाए?

जवाब यह है कि काल्पनिक व्यवस्थाएँ लगातार छँटनी के दबाव में रहती हैं। ज़्यादातर नाकाम होती हैं। जो मुद्रा महँगाई में शून्य हो जाए, वह महीनों में छोड़ दी जाती है — जैसे 2009 में ज़िम्बाब्वे की छोड़ी गई। जिस राष्ट्र के सदस्य एक-दूसरे को पहचानना बंद कर दें, वह बिखर जाता है — जैसे जून 1991 और अप्रैल 1992 के बीच यूगोस्लाविया बिखरा। जो कानूनी नियम ऐसे नतीजे दे जिन्हें लोग बर्दाश्त न करें, वह बदल दिया जाता है या नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। बड़े पैमाने पर इंसान असल में जितनी तरह की कहानियाँ चला सकते हैं, उनका दायरा तंग है, और उसकी हदें उन चीज़ों से बँधी हैं जो कहानियाँ हैं ही नहीं: अनाज की आपूर्ति, भूगोल, हिंसा, गणित, और यह कि इंसानों से करवाया क्या जा सकता है।

इसे क्या तोड़ सकता है: कुछ नहीं — जिस रूप में यह कही गई है, वह सीधे-सीधे गलत है, और खुद हरारी के बेहतर हिस्से इससे सहमत हैं।

मान्यता 7 अगर कोई चीज़ कल्पना है, तो वह बाध्यकारी नहीं है

> **एक लाइन में**
>
> गढ़े हुए नियमों का किसी पर कोई असली अधिकार नहीं होता।

यह "है" से "होना चाहिए" की तरफ़ चुपके से खिसकना है, और यहीं से वाक्य को उसका विद्रोही तेवर मिलता है। अगर आपके अधिकार एक कहानी हैं, तो कोई उनका सम्मान क्यों करे? अगर कानून एक कहानी है, तो उसे माने कौन?

लेकिन यह नतीजा निकलता ही नहीं। शतरंज गढ़ा हुआ है; फिर भी आप ऊँट को सीधा नहीं चला सकते। वादे गढ़े हुए हैं; फिर भी वादा तोड़ना गलत ही है। अंकगणित की लिखावट के नियम गढ़े हुए हैं; फिर भी दो और दो पाँच नहीं होते। "हमने इसे बनाया" आपको बताता है कि नियम आया कहाँ से। यह आपको यह नहीं बताता कि वह बाँधता है या नहीं।

> **आसान भाषा में**
>
> फ़ुटबॉल रेफ़री का अधिकार पूरी तरह गढ़ा हुआ है। मैच के बीच में जाकर उसे यह बताकर देखिए। गढ़ा हुआ अधिकार भी अधिकार ही है, ठीक उतनी देर तक जब तक खेल चल रहा है — और आप हमेशा किसी न किसी खेल के अंदर होते हैं।

इसे क्या तोड़ सकता है: कुछ करने की ज़रूरत ही नहीं। हरारी शायद खुद इससे पल्ला झाड़ लेंगे। उनके पाठक कम ही झाड़ते हैं।

मान्यता 8 लेखक कल्पना से बाहर खड़ा होकर उस पर रिपोर्ट कर सकता है

> **एक लाइन में**
>
> एक ऐसी जगह है जहाँ खड़े होकर यह सब कल्पना दिखता है, और हरारी उसी पर खड़े हैं।

हर भंडाफोड़ करने वाले तर्क को यह बताना पड़ता है कि वह खुद किस ज़मीन पर खड़ा है। हरारी ऐसी भाषा में लिखते हैं जो उन्होंने नहीं बनाई, ऐसे कॉपीराइट के तहत जो एक कानूनी कल्पना है, ऐसे पैसे के बदले बिकते हैं जिसे वे कहते हैं कि है ही नहीं, और ऐसी यूनिवर्सिटी से तनख़्वाह लेते हैं जिसकी डिग्रियाँ पूरी तरह हैसियत बाँटने का काम हैं। इनमें से कोई भी बात तर्क को ध्वस्त नहीं करती — इंसान किसी व्यवस्था के अंदर रहते हुए भी उसका वर्णन कर सकता है। लेकिन वाक्य उस आदमी की आवाज़ में लिखा गया है जो बाहर खड़ा है, और यह आत्मविश्वास से भरा लहजा वह काम कर रहा है जिसकी क़ीमत तर्क ने चुकाई नहीं है।

इस समस्या का ज़्यादा तीखा रूप नैतिक है। हरारी इसी किताब में और बाद की किताबों में यह तर्क देते हैं कि पीड़ा बुरी है — कि खेती के जानवरों के साथ हमारा बर्ताव इतिहास के सबसे बड़े अपराधों में से एक है। यह ठीक उसी किस्म का मूल्य-निर्णय है जिसे वे अभी-अभी कल्पना के खाने में डाल चुके हैं। वे इससे वाक़िफ़ हैं और इसका जवाब भी देते हैं — असल में नैतिकता की जड़ अधिकारों में नहीं, पीड़ा में रखकर: पीड़ा अंतर-व्यक्तिपरक नहीं है, पीड़ा महसूस की जाती है। यह गंभीर जवाब है। और यह इस बात की स्वीकृति भी है कि छह चीज़ों की सूची ज़रूरत से लंबी थी।

इसे क्या तोड़ सकता है: कुछ नहीं, अगर वे दावे को संस्थाओं तक सीमित रखें। सब कुछ, अगर वे इसे मूल्यों पर लगाते रहें और साथ-साथ नैतिक माँगें भी करते रहें।

मान्यता 9 यह काम सिर्फ़ इंसान करते हैं

> **एक लाइन में**
>
> कोई और जानवर साझा काल्पनिक व्यवस्था नहीं बना सकता, और इसीलिए धरती हमारे क़ब्ज़े में है।

यह मान्यता काफ़ी हद तक टिकती है, और आस-पास के सारे दावों में यही सबसे ज़्यादा सबूतों पर टिकी है। इंसानी बच्चों और चिंपैंज़ी पर माइकल टोमासेलो (Michael Tomasello) का तुलनात्मक काम सबसे मज़बूत सबूत है: बोलना सीखने से पहले ही इंसानी बच्चे अजनबियों की अपने-आप मदद करते हैं, दूसरों को जानकारी देने के लिए इशारा करते हैं, और — सबसे अहम — अभी-अभी गढ़े गए खेल के नियमों को तीसरे लोगों पर भी बाध्यकारी मानते हैं। किसी कठपुतली को “गलत” तरीक़े से करते देखकर तीन साल के बच्चे विरोध करते हैं, सुधारते हैं और सिखाते हैं। चिंपैंज़ी इनमें से कुछ नहीं करते। टोमासेलो का निचोड़ यह है कि किसी और प्रजाति के पास सामाजिक संस्था जैसा कुछ भी दूर-दूर तक नहीं है।

> **स्टीलमैन**
>
> यह हरारी का दावा है, प्रयोगशाला से पुष्ट, और यह मामूली बात नहीं है। दस मिनट पहले बने खेल के नियम लागू करवाता तीन साल का बच्चा वही काम कर रहा है जो बड़ा होकर संविधान बन जाता है। इसे जो भी नाम दें, यह चीज़ सिर्फ़ हमारे पास है।

इसे क्या तोड़ सकता है: बहुत कम। लेकिन ध्यान दीजिए कि यही सबूत शब्दावली के साथ क्या करता है: बच्चे कोई **मिथक मान** नहीं रहे। वे एक नियम पकड़ रहे हैं। टोमासेलो के नतीजे हरारी की थीसिस को सहारा देते हैं और साथ ही उनके शब्द-चयन की जड़ काट देते हैं।

मान्यता 10 साझा कल्पना के बिना बड़े पैमाने पर सहयोग नामुमकिन है

> **एक लाइन में**
>
> करीब 150 लोगों से ऊपर आप सिर्फ़ निजी जान-पहचान के दम पर सहयोग नहीं कर सकते, इसलिए साझा कहानी चाहिए।

यह संख्या रॉबिन डनबर (Robin Dunbar) के उस काम से आती है जो बंदरों के समूह के आकार को दिमाग़ के आकार से जोड़ता है। हरारी इस पर काफ़ी वज़न डालते हैं। यह लोकप्रिय लेखन के सुझाव से कहीं ज़्यादा डगमगाती हुई है। 2021 में बायोलॉजी लेटर्स में छपे एक पुनर्विश्लेषण ने आधुनिक सांख्यिकीय तरीक़ों से वही गणना दोबारा की और तरीक़े के हिसाब से केंद्रीय अनुमान 16 से 109 के बीच निकले — और 95 प्रतिशत विश्वास-अंतराल 2 से 520 तक फैला हुआ। लेखकों का निष्कर्ष दो-टूक था: कोई एक संख्या बताना बेकार है, और इंसानी समूह के आकार की कोई संज्ञानात्मक सीमा इस तरीक़े से निकाली ही नहीं जा सकती।

इससे भी अहम बात यह है कि उस छत के ऊपर जाने का रास्ता सिर्फ़ "साझा कहानी" नहीं है। व्यापार के जाल साख के दम पर फैलते हैं। रिश्तेदारी की व्यवस्थाएँ कर्तव्यों की कड़ियों से फैलती हैं। साम्राज्य ताक़त से फैलते हैं। बाज़ार क़ीमतों से फैलते हैं, और क़ीमतें ऐसी जानकारी पहुँचाती हैं जिस पर किसी को कोई साझा यक़ीन रखने की ज़रूरत नहीं होती। साझा कहानियाँ पैमाने की समस्या का एक हल हैं। हरारी उन्हें इकलौता हल बनाकर पेश करते हैं।

इसे क्या तोड़ सकता है: कोई भी बड़े पैमाने का सहयोग जो साझा यक़ीन के बजाय प्रोत्साहन पर चलता हो। अंतरराष्ट्रीय जहाज़रानी इसका ठीक-ठाक उदाहरण है।

मान्यता 11 यक़ीन हटा लीजिए, चीज़ गायब हो जाएगी

> **एक लाइन में**
>
> ये चीज़ें तभी तक हैं जब तक हम यक़ीन करते रहें, और यक़ीन रुकते ही ख़त्म।

आख़िरी हद तक सच, व्यवहार में भ्रामक — और इसी फ़ासले में इतिहास का सबसे दिलचस्प हिस्सा रहता है। काल्पनिक व्यवस्थाओं के पास जड़ता होती है, ढाँचा होता है और लागू करने की मशीनरी होती है। ये राय बदलने से बंद नहीं होतीं; ये तब बंद होती हैं जब बर्ताव बदलता है, और बर्ताव आसानी से नहीं बदलता।

दो असली मामले, दोनों भाग 07 में हैं। 1970 में जब आयरलैंड के बैंक साढ़े छह महीने बंद रहे, तो मुद्रा-आपूर्ति का करीब 85 प्रतिशत हिस्सा पहुँच से बाहर हो गया — और फिर भी मुद्रा चलती रही, क्योंकि लोग एक-दूसरे को ऐसे चेक लिखते रहे जो कहीं क्लियर नहीं हो सकते थे, और पब वाले गवाही देते रहे कि किसकी बात पर भरोसा किया जा सकता है। बैंकिंग संस्था में यक़ीन का इससे कोई लेना-देना नहीं था; नीचे मौजूद भरोसे का जाल असली था, और वह असली पड़ोसियों के बारे में असली जानकारी से बना था। इसके उलट, ज़िम्बाब्वे की मुद्रा इसलिए नहीं मरी कि लोगों ने उस पर यक़ीन करना छोड़ दिया — लोगों ने यक़ीन इसलिए छोड़ा क्योंकि एक साल में उसकी क़ीमत 89.7 सेक्सटिलियन प्रतिशत गिर गई थी। यक़ीन गणित के पीछे चला, आगे नहीं।

इसे क्या तोड़ सकता है: कुछ भी जानलेवा नहीं। लेकिन कारण-असर का तीर दोनों तरफ़ चलता है, और हरारी का वाक्य उनमें से सिर्फ़ एक खींचता है।

मान्यता 12 न्याय और मानवाधिकार उसी बक्से में हैं जिसमें पैसा है

> **एक लाइन में**
>
> कोई चीज़ सही है या नहीं — यह उतना ही इंसानी आविष्कार है जितना यह कि एक नोट दस रुपये का है।

यह वाक्य का सबसे बड़ा दार्शनिक दावा है, और इसे सूची के आख़िरी दो नामों की शक्ल में चुपके से घुसा दिया गया है। इसका एक नाम है — नैतिक अ-यथार्थवाद (moral anti-realism) — और इसका सबसे मशहूर बचाव जे. एल. मैकी (J. L. Mackie) की किताब **एथिक्स: इन्वेंटिंग राइट एंड रॉन्ग** (1977) है। मैकी का तर्क था कि वस्तुपरक मूल्य अगर होते, तो वे ब्रह्मांड की किसी भी और चीज़ से बिल्कुल अलग, बड़ी अजीब चीज़ें होतीं, और उन्हें पकड़ने के लिए हमें कोई ख़ास इंद्रिय चाहिए होती। हरारी की स्थिति इसके क़रीब है, और यह पूरी तरह सम्मानजनक है।

यह गंभीर दार्शनिकों द्वारा विवादित भी है — डेरेक पारफ़िट (Derek Parfit) की **ऑन व्हॉट मैटर्स** की तीन जिल्दें असल में इसी बात की किताब-भर लंबी दलील हैं कि कुछ चीज़ें बस गलत होती हैं, बात ख़त्म। सवाल यह नहीं है कि जीतता कौन है। सवाल यह है कि यह एक ज़िंदा क्षेत्र का खुला सवाल है, और वाक्य इसे ऐसे पेश करता है मानो इतिहास देखकर इसका फ़ैसला हो चुका हो।

> **यहाँ दरार है**
>
> इतिहास इसका फ़ैसला कर ही नहीं सकता। यह दिखा देने से कि लोगों ने मानवाधिकारों का **विचार** किसी ख़ास सदी में गढ़ा, यह पता नहीं चलता कि यातना देना गलत है या नहीं — ठीक वैसे ही जैसे यह दिखा देने से कि लोगों ने शून्य का विचार किसी ख़ास सदी में गढ़ा, यह पता नहीं चलता कि अंकगणित सही है या नहीं। कोई चीज़ आई कहाँ से, यह उसके सही होने का पैमाना नहीं है। इस उलझन का एक नाम है — उत्पत्ति का तर्कदोष (genetic fallacy) — और यह वाक्य उसी पर चलता है।

इसे क्या तोड़ सकता है: किसी भी तरफ़ कुछ भी निर्णायक नहीं। और यही तो दिक़्क़त है — इसे नौ शब्दों में ठोक देने की।

· · ·

> **यहाँ तक हम कहाँ पहुँचे**
>
> बारह में से तीन ठोस दिखती हैं (9, और 4 तथा 11 के वर्णनात्मक हिस्से)। दो सच हैं पर जितना कहा गया उससे कहीं कमज़ोर (6, 10)। चार खोज नहीं, शब्दों का चुनाव हैं (1, 2, 5, 7)। दो विवादित दर्शन हैं जिन्हें इतिहास बताकर पेश किया गया है (8, 12)। एक श्रेणी की गलती है (3)।
>
> सुनने में यह विनाशकारी लगता है। है नहीं, और अगले तीन भाग बताते हैं क्यों: बारहों आपत्तियों से बचकर निकलने वाला तर्क कवर पर छपे तर्क से ज़्यादा मज़बूत और ज़्यादा बेचैन करने वाला है। हरारी दुनिया के बारे में गलत नहीं हैं। वे शब्दावली के बारे में गलत हैं — और शब्दावली ही वह चीज़ है जिसने उन्हें मशहूर बनाया।

भाग 02

हरारी ने यह कहा क्यों — मक़सद, वंशावली और लंबा खेल

ऐसा वाक्य कोई गलती से नहीं लिखता। वह किसी चीज़ पर निशाना लगाकर लिखा जाता है। वह निशाना समझ लेने पर इस वाक्य की ज़्यादातर बनावट समझ में आ जाती है — इसकी अतिशयोक्तियाँ भी।

यह विचार एक सौ तीस साल पुराना है

इस वाक्य के बारे में जानने लायक सबसे काम की बात यह है कि इसकी सामग्री न नई है, न विवादित, और न हरारी की। यह दावा कि सामाजिक चीज़ें सामूहिक इंसानी गतिविधि से बनी होती हैं, 1890 के दशक से समाज-विज्ञान की मुख्यधारा की स्थिति रही है। एक छोटी वंशावली:

कौन और कब	उन्होंने क्या कहा	इससे क्या जुड़ा
डेविड ह्यूम 1740	संपत्ति, वादे और पैसा प्रकृति पर नहीं, चलन पर टिके हैं।	पहली साफ़ बात कि कोई नियम बिना किसी ऊपर वाली सत्ता के भी बाँध सकता है।
एमिल दुर्खीम 1895	सामाजिक तथ्य असली चीज़ें हैं — व्यक्ति से बाहर, और उस पर दबाव डालती हुई।	ज़ोर दिया कि इन्हें भ्रम नहीं, तथ्य मानकर पढ़ा जाए। हरारी से ठीक उल्टा ज़ोर।
गेओर्ग फ्रीड्रिष क्नाप 1905	पैसा कानून की पैदाइश है; राज्य तय करता है कि वह टैक्स में क्या लेगा।	पैसे की ताक़त को यक़ीन में नहीं, संस्थाओं और बल में रखा।
पीटर बर्गर और थॉमस लकमैन 1966	समाज इंसानी गतिविधि से बनता है, फिर उसके बनाने वाले ही उसे एक वस्तुपरक दी-हुई चीज़ की तरह अनुभव करते हैं।	असली चाल का नाम रखा: हम भूल जाते हैं कि हमने ही इसे बनाया है। यही हरारी की थीसिस है, पैंतालीस साल पहले।
डेविड लुईस 1969	चलन तालमेल की समस्या का हल है, जो अपेक्षा के दम पर टिका रहता है।	दिखाया कि यह पूरा तंत्र बिना किसी के कुछ भी माने चल सकता है।
बेनेडिक्ट एंडरसन 1983	राष्ट्र एक कल्पित समुदाय है — इसके सदस्य कभी मिलेंगे नहीं, फिर भी एक-दूसरे को मन में रखते हैं।	हरारी का शब्द यहीं से आया, और एंडरसन की साफ़ चेतावनी भी कि इसे इस तरह न बरता जाए।
एरिक हॉब्सबॉम और टेरेंस रेंजर 1983	बहुत सारी “प्राचीन” परंपराएँ हाल में गढ़ी गई थीं, अक्सर जान-बूझकर।	भंडाफोड़ वाली चाल के लिए सबूतों का आधार।
जॉन सर्ल 1995	संस्थागत तथ्य सामूहिक स्वीकृति से बनते हैं और उसके बाद पूरी तरह वस्तुपरक होते हैं।	तीसरा बक्सा, विस्तार से खोला हुआ। इस वाक्य का सीधा जवाब।
इयान हैकिंग 1999	सामाजिक श्रेणियाँ लूप बनाती हैं: किसी किस्म के इंसान को नाम देने से वे इंसान ही बदल जाते हैं।	इसीलिए काल्पनिक व्यवस्थाएँ सिर्फ़ मानी नहीं जातीं, खुद को मज़बूत भी करती जाती हैं।

हरारी का योगदान विचार नहीं है। उनका योगदान **पैमाना और कसाव** है — सौ साल के सामाजिक सिद्धांत को एक ऐसे वाक्य में भर देना जिसे पाठक किताब से बाहर अपने साथ ले जा सके, और उसे उस गहरे इतिहास की कहानी से जोड़ देना जो जंगल-मैदान से चलकर आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस तक पहुँचती है। यह लोकप्रियकरण की असली उपलब्धि है और इस पर नाक-भौं नहीं सिकोड़नी चाहिए। और यही वजह भी है कि वाक्य ज़रूरत से ज़्यादा कस गया है: कसाव ही वह प्रक्रिया है जिसने तीसरे बक्से को बाहर निचोड़ दिया।

उधार लिया शब्द, और लौटा दी गई चेतावनी

एंडरसन ने "कल्पित" शब्द सोच-समझकर चुना था और उसकी हिफ़ाज़त में पूरा पैराग्राफ़ ख़र्च किया था। उन्होंने अर्नेस्ट गेलनर की आलोचना की थी कि वे गढ़ने को बनावट और झूठ के बराबर मान लेते हैं, और ज़ोर दिया था कि समुदायों में फ़र्क़ "उनके झूठे या सच्चे होने से नहीं, बल्कि उस शैली से किया जाए जिसमें उनकी कल्पना की गई है।" हरारी शब्द उठा लेते हैं और पहरा गिरा देते हैं।

वाक्य का निशाना क्या है

हर भंडाफोड़ का कोई निशाना होता है। इसके तीन हैं, बढ़ती हुई महत्वाकांक्षा के क्रम में।

पहला निशाना: वर्तमान का स्वाभाविक लगना। किसी भी समाज का सबसे भरोसेमंद भ्रम यह होता है कि उसकी व्यवस्थाएँ बस "ऐसी ही होती हैं"। हरारी का पूरा तरीक़ा — पलटी, उलटाव, "आप इसे प्रगति समझ रहे थे?" वाली चाल — इसी भ्रम को तोड़ने की मशीन है। यह वाक्य उस मशीन की सबसे तेज़ आवाज़ है। और यह काम करता है। पाठक वाकई यह देखकर लौटते हैं कि वर्तमान कई संभव व्यवस्थाओं में से एक है।

दूसरा निशाना: आधुनिक पश्चिम का ख़ुद को ख़ास मानना। हरारी साफ़ कहते हैं कि वकील की तुलना जादूगर से करने का मक़सद आधुनिक संस्थाओं से उनका ख़ास दर्जा छीनना है। "आदिम" लोगों के पास मिथक थे; हमारे पास कॉरपोरेशन हैं; उनका दावा है कि दोनों एक ही कारीगरी हैं। तर्क के बारे में आपकी जो भी राय हो, नीयत बराबरी लाने की है, और यह एक सम्मानित बौद्धिक परंपरा है।

तीसरा निशाना: खुद मानवतावाद। यही महत्वाकांक्षी वाला है, और बाद की किताबें इसी दिशा में जाती हैं। अगर मानवाधिकार एक कहानी हैं, तो धर्मनिरपेक्ष उदारवादी व्यवस्था इतिहास का अंत नहीं, बल्कि एक और अस्थायी इंतज़ाम है, और उसका ढह जाना अकल्पनीय नहीं है। **होमो डेउस** (2015) ठीक इसी धुरी पर घूमती है: एल्गोरिदम से चलने वाली व्यवस्था अधिकारों से चलने वाली व्यवस्था से किस्म में अलग नहीं, बस नई है।

मक़सद का स्टीलमैन

इसमें कुछ भी धूर्तता नहीं है। हरारी का घोषित लक्ष्य यह है कि पाठक उस पानी को देख सकें जिसमें वे तैर रहे हैं, ताकि वे पूछ सकें कि उन्हें यह पानी चाहिए भी या नहीं। किसी बात को बढ़ा-चढ़ाकर कहने की यह एक जायज़ वजह है। जो वाक्य कहता कि "सामाजिक संस्थाएँ सामूहिक स्वीकृति से बनी अंतर-व्यक्तिपरक परिघटनाएँ हैं", वह ज़्यादा सटीक होता और किसी की भी राय ज़रा भी न बदलता।

समय, जो संयोग नहीं है

सेपिएंस हिब्रू में 2011 में और अंग्रेज़ी में 2014 में आई — यानी 2008 के वित्तीय संकट के बाद वाले गड्ढे में, ठीक उस वक़्त जब दुनिया की सबसे बड़ी संस्थाओं का यह भेद अभी-अभी खुला था कि वे सिर्फ़ भरोसे पर चल रही थीं, और कुछ नहीं था नीचे। "पैसा एक कहानी है जिस पर हम यक़ीन करने को राज़ी हैं" — 2011 में यह बेचना मुश्किल नहीं था। यह वह व्याख्या थी जिसकी तरफ़ लोग पहले से ही हाथ बढ़ा रहे थे।

यह निदान है, नीयत पर शक नहीं, और इसे इस सवाल से अलग रखा गया है कि दावा सच है या नहीं। कोई किताब पूरी तरह सही भी हो सकती है और पूरी तरह सही वक़्त पर भी आ सकती है। लेकिन इससे उसका स्वागत समझ में आता है: वाक्य इसलिए फैला क्योंकि उसने उस चीज़ को नाम दे दिया जो पाठक अभी-अभी अपनी आँखों से होते देख चुके थे।

कसाव की क़ीमत

सौ साल के सिद्धांत को नौ शब्दों में निचोड़ने पर दो चीज़ें खो गईं।

पहली है दुर्खीम का ज़ोर। 1895 में दुर्खीम की पूरी बात यह थी कि सामाजिक तथ्यों को चीज़ों की तरह बरता जाए — कठोर, बाहरी, प्रतिरोध करने वाली, और उतनी ही गंभीरता से पढ़े जाने लायक जितनी गंभीरता से कोई प्राकृतिक वैज्ञानिक पढ़ता है। हरारी नतीजा तो विरासत में लेते हैं पर मिज़ाज उलट देते हैं: जिसे दुर्खीम तथ्य कहते थे, उसे हरारी कल्पना कहते हैं। इशारा एक ही चीज़ की तरफ़, पाठक को हिदायत ठीक उल्टी।

दूसरी है सर्ल का तीसरा बक्सा, जो कोई बारीक़ी नहीं बल्कि पूरी इमारत का ढाँचा है। वह हट जाने के बाद वाक्य के पास वादे, शतरंज के नियम, सरहद या कर्ज़ को रखने के लिए परी-कथाओं वाले डिब्बे के सिवा कोई जगह नहीं बचती — और पाठक, जो अच्छी तरह जानता है कि कर्ज़ परी-कथा जैसा नहीं होता, या तो वाक्य को ठुकरा देता है या, ज़्यादातर मामलों में, उसे एक धुँधले तरीक़े से मान लेता है जो किसी भी ठोस चीज़ से टकराते ही टूट जाता है।

> **एक लाइन में**
>
> हरारी ने यह खोज नहीं की कि समाज लोगों का बनाया हुआ है। उन्होंने इस बात को कहने का वह एक तरीक़ा ढूँढ़ा जो दस करोड़ पाठकों को याद रह गया — और वही तरीक़ा वह हिस्सा है जो गलत है।

भाग 03

स्टीलमैन, पहला स्तर: सबसे मज़बूत ईमानदार दलील

यहाँ तर्क को उसके सबसे अच्छे रूप में खड़ा किया गया है, सबसे अच्छे उपलब्ध सबूतों के साथ, बिना किसी सस्ती चोट के। स्टीलमैन का मतलब है: अगर असहमत होना है, तो इसी रूप से होइए — किसी कमज़ोर रूप से नहीं जो आपने खुद गढ़ लिया हो।

पूरी दलील, एक पैराग्राफ़ में

इंसान लाखों की संख्या में सहयोग करते हैं, ऐसे अजनबियों के साथ जिनसे वे कभी नहीं मिलेंगे, ऐसे कामों पर जिनका पूरा रूप उनमें से किसी को दिखाई नहीं देता। कोई और जानवर यह नहीं करता। यह निजी जान-पहचान के दम पर नहीं चल सकता, क्योंकि इतनी जान-पहचान होती ही नहीं; और यह सहजवृत्ति के दम पर भी नहीं चल सकता, क्योंकि यह बहुत तेज़ी से बदलता है — कोई साम्राज्य एक साल में गणतंत्र बन सकता है, जो किसी भी आनुवंशिक बदलाव से हज़ार गुना तेज़ है। तो यह ज़रूर किसी ऐसी चीज़ पर चलता होगा जो साझा है, सीखी हुई है, और प्रकृति से मिली हुई नहीं है। वह चीज़ जो भी हो, ब्रह्मांड के भौतिक सामान का हिस्सा नहीं है, और सारे इंसान चले जाएँ तो वह भी साथ चली जाएगी। हरारी की छह चीज़ें उसी के नमूने हैं।

सबसे मज़बूत सबूत: वे चीज़ें जिन्हें प्रक्रिया से बनाया और मिटाया जा सकता है

यह रहा तर्क का सबसे तीखा रूप, और यह “कल्पना” शब्द पर बिल्कुल भी निर्भर नहीं करता।

सोचिए कि एक नया पहाड़ बनाने में क्या लगेगा। अब सोचिए कि एक नई कंपनी बनाने में क्या लगता है: एक फ़ॉर्म, एक फ़ीस, रजिस्टर में एक प्रविष्टि। बीस मिनट। उसे ख़त्म करने में क्या लगता है — एक दूसरा फ़ॉर्म। एक नया कानूनी कर्तव्य बनाने में क्या लगता है — किसी मंगलवार को सदन में बहुमत। एक काग़ज़ के टुकड़े को हज़ार रुपये का बनाने में क्या लगता है — छपाई का एक फ़ैसला। उसे शून्य का बनाने में क्या लगता है — एक घोषणा।

> **स्टीलमैन**
>
> कोई भी वस्तुपरक चीज़ ऐसा बर्ताव नहीं करती। रेडियोधर्मिता को रद्द नहीं किया जा सकता। प्रशांत महासागर को फ़ॉर्म भरकर भंग नहीं किया जा सकता। हरारी की सूची की छहों चीज़ों में एक ऐसा गुण साझा है जो किसी भौतिक चीज़ में नहीं है: **इन्हें घोषणा से बनाया और घोषणा से मिटाया जा सकता है, बशर्ते घोषणा सही ढंग से, सही लोगों द्वारा की जाए और पर्याप्त लोग उसे मान लें।** यह किस्म का असली और गहरा फ़र्क़ है, और इसे नाम देना अपने आप में काम की बात है।

पैसा: सामग्री कभी मायने रखती ही नहीं थी

पैसे का इतिहास इस दलील का सबसे अच्छा नमूना है, क्योंकि यह चार हज़ार साल तक चला हुआ नियंत्रित प्रयोग है। पैसा जौ रहा है, कौड़ियाँ, मवेशी, चाँदी, तंबाकू सिगरेट, काग़ज़, और डेटाबेस में लिखा एक अंक। इस सूची में कोई एक भौतिक गुण साझा नहीं है। जौ खाया जा सकता है; चाँदी नहीं। कौड़ियाँ उठाकर ले जाई जा सकती हैं; याप द्वीप की विशाल चूना-पत्थर की चकतियाँ नहीं — कुछ का वज़न कई टन है और कुछ तो कभी हिलाई ही नहीं गईं।

याप वाला मामला सबसे साफ़ है। पत्थर की मिल्कियत बदल सकती थी बिना पत्थर के कहीं हिले। सबसे ज़्यादा दोहराए जाने वाले किस्से में, एक पत्थर लौटती यात्रा में समुद्र में गिर गया और डूब गया; समुदाय ने तय किया कि वह फिर भी गिना जाएगा, और वह समुद्र की तह में पड़े-पड़े मालिक बदलता रहा। मिल्टन फ्रीडमैन (Milton Friedman) की इस पर टिप्पणी वह है जो चुभती है: 1932 में जब फ़्रांस के बैंक को सोना चाहिए था, तो न्यूयॉर्क फ़ेड ने कोई सोना भेजा ही नहीं; उसने सिल्लियों को दूसरे ख़ाने में सरका दिया और एक लेबल लिख दिया। वही कारीगरी। बस दूसरा द्वीप।

आसान भाषा में

अगर समुद्र की तह में पड़ा सिक्का और बैंक के डेटाबेस में लिखा अंक — दोनों पैसा हो सकते हैं, तो पैसा कभी वह वस्तु था ही नहीं। पैसा उस वस्तु के बारे में की गई सहमति थी। सहमति हटा दीजिए, हाथ में एक पत्थर बचता है।

कंपनियाँ: वह व्यक्ति जो कभी था ही नहीं

1897 में हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स ने **सैलोमन बनाम ए सैलोमन एंड कंपनी लिमिटेड** का फ़ैसला सुनाया। एरॉन सैलोमन ने जूतों का अपना कारोबार कंपनी में बदल दिया था और लगभग सारे शेयर अपने पास रखे थे। कारोबार डूबा तो कर्ज़दाताओं ने कहा कि कंपनी असल में सैलोमन ही है और उसे ही चुकाना चाहिए। लॉर्ड्स ने कहा — नहीं: एक बार पंजीकृत हो जाने के बाद कंपनी को एक अलग व्यक्ति माना जाएगा, जिसके अपने अधिकार होंगे और अपने कर्ज़।

यही फ़ैसला आधुनिक कॉरपोरेट दुनिया की नींव है। और इसने जो ऐलान किया वह यह था कि एक ऐसी चीज़, जिसके पास न शरीर है, न दिमाग़, न कोई जगह, ज़रूरी कामों के लिए "व्यक्ति" है, और उसके कर्ज़ आपके कर्ज़ नहीं हैं। हरारी की टोटम से की गई तुलना बेवकूफ़ी नहीं है। उस दिन कोई ऐसी चीज़ अस्तित्व में लाई गई जो पहले नहीं थी, और उसका इकलौता कच्चा माल शब्द थे।

राष्ट्र: एक को घुलते हुए देखिए

जून 1991 और अप्रैल 1992 के बीच यूगोस्लाविया का होना बंद हो गया। कोई महाद्वीप नहीं हिला। हर पहाड़, नदी, कारख़ाना और इंसान ठीक वहीं रहा जहाँ था। जो बदला वह यह था कि लोग खुद को और एक-दूसरे को क्या मानते थे — और जनगणना ने इसे पकड़ लिया: युद्ध के बाद के दशकों में खुद को "यूगोस्लाव" बताने वालों की संख्या बढ़ी थी और फिर 1991 की गिनती तक गिरकर करीब तीन प्रतिशत रह गई। जब पर्याप्त लोगों ने उस समुदाय को मन में रखना बंद कर दिया, समुदाय ख़त्म हो गया — और उसके बाद जो युद्ध हुआ वह इस बात पर लड़ा गया कि उसकी जगह लेने वाली कौन-सी कल्पना को ज़मीन मिलेगी।

अधिकार: इन पर वोट कराना पड़ा था

10 दिसंबर 1948 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा को अपनाया। 58 सदस्यों में से 48 ने पक्ष में वोट दिया, किसी ने विरोध में नहीं, आठ ने मतदान से दूरी बनाई और दो ने वोट डाला ही नहीं। सऊदी अरब ने धर्म बदलने के अधिकार पर दूरी बनाई। दक्षिण अफ़्रीका ने इसलिए दूरी बनाई क्योंकि नस्लीय बराबरी उस व्यवस्था से मेल नहीं खाती थी जो वह अपने यहाँ खड़ी कर रहा था। सोवियत खेमे ने व्यक्तिगत गारंटियों की मज़बूती पर दूरी बनाई।

स्टीलमैन

पानी के उबलने के तापमान पर कोई वोट नहीं कराता। इतिहास में मानवाधिकारों का सबसे अहम दस्तावेज़ हाथ उठाकर लागू हुआ, दर्ज की गई आपत्तियों के साथ, और तब से उसका अधिकार इसी बात से आया है कि राज्य उसे बाध्यकारी मानकर बरतते रहे हैं। यह ठीक वही ढाँचा है जिसका वर्णन हरारी करते हैं। बाकी जो भी सच हो, अधिकार दुनिया में एक प्रक्रिया के रास्ते आए।

और क्षमता के बारे में प्रयोगशाला भी यही कहती है

माइकल टोमासेलो के तुलनात्मक प्रयोग इसकी अनुभवजन्य रीढ़ हैं। तीन साल का बच्चा दो मिनट तक एक वयस्क को नया गढ़ा हुआ खेल खेलते देखता है। फिर एक कठपुतली आकर उसे गलत तरीक़े से करती है। बच्चा विरोध करता है — इसलिए नहीं कि उसका कोई नुकसान हुआ, बल्कि इसलिए कि यह ऐसे नहीं किया जाता। उसने दो मिनट में एक नियम सीखा, उसे किसी तीसरे पर लागू किया, और उसे लागू करवाने की ज़िम्मेदारी भी उठा ली। उसी प्रयोगशाला में पले चिंपैंज़ी किसी भी उम्र में यह नहीं करते।

बच्चे के पढ़ना सीखने से पहले दिखने वाली यह प्रतिक्रिया हरारी की पूरी सूची की सबसे छोटी दिखाई देने वाली इकाई है। इसे बड़ा कीजिए और आपको रेफ़री, रजिस्ट्रार, जज, केंद्रीय बैंक और संविधान मिलते हैं।

पहला स्तर, निचोड़ में

छह चीज़ें, जो घोषणा से बनाई जा सकती हैं, घोषणा से मिटाई जा सकती हैं, किसी भी भौतिक सामग्री में — या बिना किसी सामग्री के — ढाली जा सकती हैं, और जिन्हें तीन साल के बच्चे तक लागू करवाते हैं। ये ब्रह्मांड के सामान का हिस्सा नहीं हैं। इन सब बातों में हरारी सही हैं, और इनमें सही होना कोई छोटी बात नहीं है।

भाग 04

स्टीलमैन, दूसरा स्तर: वह तर्क जो हर हमले से बच जाता है

अब मुश्किल हिस्सा। हम हर अच्छी आपत्ति हरारी के पक्ष को सौंप देते हैं और उन्हें दोबारा तर्क खड़ा करने देते हैं। जो निकलकर आता है वह किताब वाले तर्क से ज़्यादा मज़बूत है — और ज़्यादा बेचैन करने वाला भी, क्योंकि अब वह इस पर निर्भर ही नहीं करता कि इनमें से कुछ असली है या नहीं।

सब कुछ मान लिया जाता है

आलोचकों को सब कुछ दे दीजिए। मान लीजिए कि "कल्पना" गलत शब्द है और "चलन" सही। सर्ल का तीसरा बक्सा मान लीजिए: पैसा ज्ञान की दृष्टि से वस्तुपरक है, और जो कहे कि दस के नोट की क़ीमत हज़ार रुपये है, वह बस गलत है। मान लीजिए कि विश्वास और चलन दो अलग जानवर हैं। मान लीजिए कि मानवाधिकार वस्तुपरक रूप से असली हो सकते हैं और मैकी गलत हो सकते हैं। मान लीजिए कि ईश्वर का उस सूची में कोई काम नहीं है।

अब देखिए कि पीछे क्या बचता है, क्योंकि जो तर्क बचता है, डरने लायक वही है।

स्टीलमैन, दूसरा स्तर — बोझ उठाने वाली कल्पना

दिलचस्प दावा कभी यह था ही नहीं कि ये चीज़ें अवास्तविक हैं। दावा यह है: **समाज को जोड़े रखने वाली व्यवस्था ठीक उतनी ही चलती है जितना उसके भीतर रहने वाले लोग उसे "व्यवस्था" की तरह महसूस नहीं करते।**

यह नहीं कि "वे कोई झूठी बात मानते हैं"। इससे कहीं संकरी और कहीं बुरी बात: जो इंतज़ाम कुछ और भी हो सकता था, उसे वे ऐसे इंतज़ाम की तरह जीते हैं जो कुछ और हो ही नहीं सकता था। कल्पना विषय-वस्तु में नहीं है। कल्पना उस अनिवार्यता में है।

यह रूप ज़्यादा मज़बूत क्यों है

क्योंकि अब यह इस बात से बेपरवाह है कि असल में चीज़ें हैं क्या। इससे फ़र्क़ नहीं पड़ता कि मानवाधिकार वस्तुपरक रूप से सच हैं या नहीं। अगर हैं भी — अगर यातना उतनी ही गलत है जितना दो और दो चार होते हैं — तब भी यह बात बनी रहती है कि 1948 में पेरिस में अपनाई गई अधिकारों की वह ख़ास सूची, उन्हीं शब्दों में, उन्हीं छूटी हुई चीज़ों के साथ, कई संभव इंतज़ामों में से एक है, और उसके नीचे रहने वाले लोग उसे बस "एक शालीन समाज ऐसा ही होता है" की तरह जीते हैं। यह दावा बाकी हर चीज़ में गलत साबित होने के बाद भी बचा रहता है।

और अब यह भंडाफोड़ नहीं रह जाता, एक मशीनरी का विवरण बन जाता है। उस मशीनरी की तीन टाँगें हैं, और तीनों के अपने-अपने सबूत हैं।

पहली टाँग: व्यवस्था जितनी गहरी, उतनी ही अदृश्य

जिन नियमों को लोग बोलकर बता सकते हैं, वे उथले नियम हैं। किसी से पूछिए कि वित्तीय वर्ष उसी तारीख़ को क्यों ख़त्म होता है, तो वह कंधे उचका देगा: ज़ाहिर है, मनमाना चलन है। लेकिन पूछिए कि किसी आदमी का कर्ज़ उसके बच्चों पर क्यों नहीं जाता, या ज़मीन पर मिल्कियत होती ही क्यों है, या शब्दों में किया वादा क्यों बाँधता है और मन में किया वादा क्यों नहीं — तो कुछ और होता है। सवाल सवाल जैसा लगना ही बंद कर देता है। यही अटकन बोझ उठाने वाले नियम की पहचान है।

बर्गर और लकमैन ने 1966 में इसे नाम दिया था: वह प्रक्रिया जिसमें इंसान की बनाई हुई चीज़ एक वस्तुपरक दी-हुई चीज़ की तरह अनुभव होने लगती है, और बनाना भुला दिया जाता है। हरारी का योगदान यह है कि उन्होंने दस करोड़ लोगों को यह चीज़ महसूस करवा दी।

दूसरी टाँग: व्यवस्था उन्हीं लोगों को गढ़ती है जो उसे बदल सकते थे

यह वह टाँग है जिसे हरारी आधा कहते हैं और इयान हैकिंग ने सटीक बनाया। इंसानी दुनिया की श्रेणियाँ लूप बनाती हैं। किसी किस्म के इंसान को नाम दीजिए — अपराधी, उपभोक्ता, प्रतिभा, जाति, कोई आँकड़ों वाला वर्ग — और जिन्हें यह नाम मिला है उन्हें पता चल जाता है कि उन्हें यह नाम मिला है; वे ख़ुद को उसके हिसाब से ढालते हैं, विरोध करते हैं, अभिनय करते हैं या उसे भीतर उतार लेते हैं — और तब उस श्रेणी को उन्हीं बदले हुए लोगों के हिसाब से दोबारा गढ़ना पड़ता है।

भौतिकी में ऐसा कुछ नहीं होता। यूरेनियम यूरेनियम पर छपा शोध-पत्र नहीं पढ़ता। इसका नतीजा यह है कि काल्पनिक व्यवस्था कोई कोट नहीं है जिसे आप अपने तयशुदा “मैं” के ऊपर पहनते हैं; वह आंशिक रूप से वही मशीन है जो उस “मैं” को बनाती है, जिसे बाद में यह कोट उतारने की इच्छा करनी होगी।

आसान भाषा में

जो नियम-पुस्तिका चुपचाप खिलाड़ियों को ही बदलती रहती है, उसे पलटना उस नियम-पुस्तिका से कहीं मुश्किल है जो ऐसा नहीं करती। जब तक आप इतने बड़े होते हैं कि अपनी परवरिश पर सवाल उठा सकें, तब तक वह सवाल उसी इंसान से उठ रहा होता है जिसे उसी परवरिश ने बनाया है।

तीसरी टाँग: बाहर निकलने का रास्ता नहीं है, सिर्फ़ तबादला है

आख़िरी टाँग वह है जो तर्क को दिलचस्प से बदलकर अटल बना देती है। आप किसी भी एक काल्पनिक व्यवस्था से बाहर निकल सकते हैं। आप काल्पनिक व्यवस्था नाम की चीज़ से बाहर नहीं निकल सकते। अपने राष्ट्र को ठुकराइए और आप किसी प्रवासी समुदाय, किसी आंदोलन, किसी पंथ या किसी बाज़ार में शामिल हो जाएँगे — हर एक के अपने सदस्यता-नियम, अपनी पवित्र चीज़ें और अपनी सज़ाएँ हैं। पैसा ठुकराइए और आप अदला-बदली पर आ जाते हैं, जो ख़ुद एक चलन है। कानून ठुकराइए और आप उसके चलन के नीचे आ जाते हैं जिसके पास आस-पास सबसे ज़्यादा ताक़त है।

हरारी का अध्याय 6 यह बात कहता है और फिर वह करता है जो लोकप्रिय लेखन में कम ही होता है: वे इसे बाहर निकलने के रास्ते पर भी लागू करते हैं। जो आदमी ऐलान करता है कि सारी व्यवस्थाएँ कल्पना हैं और अब वह अपने मूल्यों के हिसाब से जिएगा, वह बाहर नहीं खड़ा है। वह एक और काल्पनिक व्यवस्था के भीतर खड़ा है — आधुनिक वाली, जिसमें “अपने ख़ुद के मूल्य होना” ही सही चीज़ मानी जाती है।

स्टीलमैन

यही वह हिस्सा है जिसकी वजह से यह अध्याय अपनी ख़ामियों के बावजूद पढ़ने लायक है। किसी काल्पनिक व्यवस्था से निकलने के लिए कम से कम उतनी ही ताक़तवर वैकल्पिक व्यवस्था की कल्पना करनी पड़ती है, और पर्याप्त लोगों से वह कल्पना साझा करवानी पड़ती है। यह मन का काम नहीं है। यह राजनीति का काम है, और इसमें आमतौर पर एक पीढ़ी या एक युद्ध लगता है। जिसने “सब कुछ देख लिया है”, उसने सबसे आसान हिस्सा कर लिया है और अब कमरे में सबसे ज़्यादा आत्मविश्वासी और सबसे कम काम का आदमी वही है।

यह रूप जो भविष्यवाणी करता है

दोबारा खड़ा किया गया तर्क तभी काम का है जब उसे जाँचा जा सके। यह वाला एक जाँचने लायक दावा करता है, और इसी वजह से यह पूरी कसरत सिर्फ़ शब्दों का खेल नहीं है:

किसी भी समाज में, व्यवस्था के बोझ उठाने वाले हिस्से वही होंगे जिन्हें उसके सदस्य शब्दों में रखने में सबसे ज़्यादा मुश्किल पाते हैं, महसूस सबसे आसानी से करते हैं, और जिनके बारे में पूछे जाने पर सबसे ज़्यादा चौंकते हैं — और उनका बचाव वे तर्कों से नहीं, बल्कि यह कहकर करेंगे कि यहाँ किसी तर्क की ज़रूरत ही नहीं है।

यह जाँचा जा सकता है, और जाँच में खरा उतरता है। इसे किसी भी समाज पर आज़माकर देखिए, अपने समाज पर भी। जिन बातों पर लोग पूरी शाम ख़ुशी-ख़ुशी बहस करेंगे, वे हल्की बातें हैं। जिन बातों पर ख़ाली नज़र, हँसी या गुस्सा मिलता है, वही छत को थामे हुए हैं। यह वाकई काम का औज़ार है, और यह इस बात से बेपरवाह होकर चलता है कि हरारी की सूची में एक भी चीज़ काल्पनिक है या नहीं।

> **दूसरा स्तर, निचोड़ में**
>
> “कल्पना” छोड़ दीजिए। “अवास्तविक” छोड़ दीजिए। यह रख लीजिए: पैसे और अधिकारों के बारे में सैद्धांतिक रूप से जो भी सच हो, आपको जो चीज़ें ज़ाहिर, स्वाभाविक और बहस से बाहर लगती हैं — वह एहसास बनाया गया है, बनाए रखा जा रहा है, इस्तेमाल के दौरान आपको ही बदलता रहता है, और इससे बाहर सिर्फ़ किसी दूसरे ऐसे ही एहसास में निकला जा सकता है। यह दावा अगले भाग की हर आपत्ति से बच जाता है।

भाग 05

यहाँ दरार है — श्रेणी की गलती और गायब तीसरा बक्सा

अब हमला। इनमें से कुछ तर्क की दिक़्क़तें हैं। कुछ सबूतों की। और कुछ ऐसी हैं जिनका ज़िक्र इस अध्याय पर होने वाली आम बहस में लगभग कभी नहीं होता, क्योंकि वे प्रशंसकों और आलोचकों — दोनों के लिए असुविधाजनक हैं।

5.1 तीसरा बक्सा मौजूद है, और उस पर विस्तार से काम हो चुका है

यही केंद्रीय दरार है, और बाकी सब इसी से निकलता है।

1995 में दार्शनिक जॉन सर्ल (John Searle) ने द कंस्ट्रक्शन ऑफ़ सोशल रियलिटी छापी, जो ठीक हरारी वाले सवाल पर आज का मानक ग्रंथ है। इसका मूल सूत्र तीन शब्दों का है: **संदर्भ C में X को Y गिना जाता है।** काग़ज़ का यह टुकड़ा (X) भारत (C) में पैसा (Y) गिना जाता है। यह व्यक्ति (X) इस अदालत (C) में जज (Y) गिना जाता है। ज़मीन पर खिंची यह लकीर (X) इन दो राज्यों (C) के बीच सरहद (Y) गिनी जाती है।

फिर सर्ल वह फ़र्क़ खींचते हैं जो हमारे कवर पर छपे वाक्य को ढहा देता है। वे "वस्तुपरक" के दो मतलब अलग करते हैं:

कौन-सा अर्थ	यह किस सवाल का जवाब देता है	पैसे का जवाब
अस्तित्व की दृष्टि से व्यक्तिपरक ontologically subjective	क्या इसका होना दिमागों पर टिका है?	हाँ। लोग नहीं, तो पैसा नहीं।
ज्ञान की दृष्टि से वस्तुपरक epistemically objective	क्या इसके बारे में आप सीधे-सीधे गलत हो सकते हैं?	हाँ। "यह नोट एक लाख का है" झूठ है, और कितनी भी ईमानदारी से कहा जाए, झूठ ही रहेगा।

दोनों एक साथ। यही जोड़ तीसरा बक्सा है, और यह कोई गोलमोल समझौता नहीं है — यह इंसानी ज़िंदगी के ज़्यादातर हिस्से की सामान्य हालत है। शतरंज, व्याकरण, कर्ज़, शादियाँ, ऑफ़साइड, डिग्रियाँ, सरहदें, वादे, क़ीमतें और पासपोर्ट — सब यहीं रहते हैं।

> **यहाँ दरार है**
>
> हरारी के पास यह बक्सा है। वे इसे अंतर-व्यक्तिपरक कहते हैं और अध्याय 6 में ठीक-ठाक समझाते भी हैं। लेकिन मशहूर वाक्य ऐसे बोलता है मानो वह बक्सा है ही नहीं। "साझा कल्पना के बाहर कोई पैसा नहीं" तभी तक चौंकाने वाला है जब तक विकल्प सिर्फ़ पत्थर और परी हों। तीसरा बक्सा मेज़ पर आते ही वाक्य सिकुड़कर इतना रह जाता है: **पैसा एक संस्थागत तथ्य है** — जो सच है, और जिसे कोई कोट नहीं करेगा।

5.2 चलन विश्वास नहीं होता, और पूरा तर्क इसी फ़र्क़ पर घूमता है

2017 की समीक्षा में हालपाइक की आपत्ति इस अध्याय पर लिखा गया सबसे नुकसानदेह पैराग्राफ़ है। उनका कहना है कि हरारी विश्वास और चलन में फ़र्क़ नहीं कर पाते, ज़ाहिरा तौर पर इसलिए कि दोनों में से कोई भौतिक वस्तु नहीं है।

दोनों को अगल-बगल रखिए:

	विश्वास	चलन
यह पैदा कैसे होता है	अनुभव और विरासत में मिली सोच से उगता है। कोई तय करके विश्वास नहीं पालता।	अपनाया जाता है — कभी सोच-समझकर, कभी अपने आप बहते-बहते — किसी समस्या को हल करने के लिए।
मानने वाला क्या सोचता है	कि यह सच है।	कि यह काम का है, और कुछ और भी हो सकता था।
यह जान लेना कि यह गढ़ा हुआ है — क्या इसे ख़त्म कर देता है?	आमतौर पर हाँ।	नहीं। सबको पहले से पता है।
उदाहरण	पुरखे घर की रखवाली करते हैं।	बाईं तरफ़ गाड़ी चलाना। कंपनी अपने कर्ज़ की खुद ज़िम्मेदार है।

तीसरी पंक्ति वाली कसौटी निर्णायक है। जो मिथक खुद ऐलान कर दे कि वह मिथक है, वह काम करना बंद कर देता है। जो चलन खुद ऐलान कर दे कि वह चलन है, वह पहले जितना ही अच्छा काम करता रहता है। हर रजिस्ट्रार, जज और केंद्रीय बैंकर जानता है कि कंपनी का रूप एक औज़ार है, और उनके जानने से वह औज़ार एक ग्राम भी कमज़ोर नहीं होता।

इसलिए जब हरारी कंपनी बनाने वाले वकील को सजे हुए काग़ज़ पर मंत्र लिखता जादूगर बताते हैं, तो बिंब यादगार है और विश्लेषण उल्टा। जादू के लिए ज़रूरी है कि दर्शक को पता न हो। कंपनी बनाने के लिए ज़रूरी है कि सबको पता हो।

5.3 तीन अलग किस्म के दावे, एक ही सूची पहनकर

मान्यता 3 पर लौटिए, क्योंकि वह पूरे इलाज की हक़दार है। छह चीज़ें तीन बनावटों में बँटती हैं:

- **स्वीकृति से बनी हुई** — पैसा, राष्ट्र, कानून, कंपनियाँ। यक़ीन ही इनका कच्चा माल है। “ये सिर्फ़ साझा कल्पना में हैं” इनकी बनावट का सही विवरण है।
- **जिनके बारे में दावा है कि वे स्वीकृति से स्वतंत्र हैं** — ईश्वर। आस्तिक का दावा यही है कि यह तब भी है जब कोई न माने। इससे इनकार करना नास्तिकता है, और उसके लिए नास्तिकता के तर्क चाहिए, पैसे वाले तर्क नहीं।
- **जिन पर दोनों तरफ़ से विवाद है** — मानवाधिकार, न्याय। ये बनाए गए हैं या खोजे गए — यह दर्शनशास्त्र के सबसे पुराने खुले सवालों में से एक है।

एक वाक्य, तीन तर्क-पद्धतियाँ। जो पाठक “हमारी कल्पना के बाहर कोई पैसा नहीं” पर सिर हिलाता है — और ठीक ही हिलाता है — उसे चालाकी से दो और दावों पर सिर हिलाने की जगह ले आया गया है, जिन पर कभी कोई तर्क दिया ही नहीं गया।

आसान भाषा में

“इंसानी कल्पना के बाहर न कोई परी है, न कोई भूत, न पैसा, और न बच्चों को यातना देने में कोई बुराई।” सूची में हर चीज़ अपने पड़ोसी की विश्वसनीयता उधार ले लेती है। किसी एक को उठाकर अकेला काग़ज़ पर रख दीजिए, और उसके लिए अलग से दलील देनी पड़ेगी।

5.4 "कल्पना" तीन काम कर रहा है और मानता सिर्फ़ एक है

इस शब्द को पूरी किताब में पीछा करके देखिए — बोझ पड़ते ही इसका मतलब खिसकता रहता है:

1. **कल्पना यानी "भौतिक नहीं"।** हानिरहित, और यह सच्चाई, व्याकरण, संख्याओं और दया पर भी लागू होता है। अगर यही मतलब है, तो वाक्य मामूली है।
2. **कल्पना यानी "हम पर टिका हुआ"।** यह भी ठीक है, और संस्थाओं का सही विवरण है। अगर यही मतलब है, तो वाक्य सच है और बिल्कुल साधारण।
3. **कल्पना यानी "गढ़ा हुआ, इसलिए झूठा, इसलिए गंभीरता से लेने लायक नहीं"।** वाक्य की सारी ताक़त यहीं से आती है। और यही वह मतलब है जिसके पक्ष में किताब में कुछ भी नहीं है।

जो तर्क दो पाठों में मामूली रूप से सच हो और एक तीसरे, बिना सबूत वाले पाठ में रोमांचक हो — वह तर्क नहीं है। वह द्व्यर्थता है (equivocation) — तर्क की सबसे पुरानी खोट, और सबसे मुश्किल से दिखने वाली, ख़ासकर तब जब वाक्य सुंदर हो।

5.5 कोई चीज़ आई कहाँ से — यह उसके सही होने का सवाल नहीं है

इतिहास से भंडाफोड़ करने की चाल की एक ढाँचागत सीमा है, और वह सूची की आख़िरी दो चीज़ों पर लागू होती है।

मान लीजिए यह बिना किसी शक के साबित हो जाए कि सार्वभौम मानवाधिकारों का विचार स्टोइक दर्शन, ईसाई धर्मशास्त्र, प्रबोधन-काल की बहसों और युद्ध के बाद के आतंक की एक ख़ास गुत्थी से निकला था, और कि एक निश्चित तारीख़ से पहले किसी समाज ने यह विचार नहीं रखा था। इससे यह क्या पता चलता है कि यातना देना गलत है या नहीं? कुछ नहीं। शून्य नाम की संख्या का भी एक जाना-पहचाना इतिहास है, जो भारतीय गणित से होता हुआ यूरोप देर से पहुँचा; वह इतिहास दिलचस्प है और आपको यह बिल्कुल नहीं बताता कि शून्य काम करता है या नहीं।

यही उत्पत्ति का तर्कदोष है: किसी दावे को इस आधार पर परखना कि वह आया कहाँ से। यही पूरी भंडाफोड़-शैली का इंजन है, और यह हर बार अवैध है। हरारी इसे साफ़-साफ़ नहीं करते। वाक्य उनकी जगह कर देता है, और पाठक बाकी काम पूरा कर देता है।

5.6 बंदूकें काल्पनिक नहीं हैं

"सिर्फ़ साझा कल्पना में मौजूद" कहने से व्यवस्था किसी मूड जैसी लगने लगती है। उससे बाहर निकलकर देखिए।

टैक्स देना बंद कीजिए और काल्पनिक राज्य असली लोगों को भेजकर असली संपत्ति उठा ले जाएगा। सरहद को नज़रअंदाज़ कीजिए और बंदूक लिए खड़े आदमी — जो कोई रूपक नहीं हैं — आपको हिरासत में ले लेंगे। जिस मुद्रा पर राज्य ने रोक लगाई है उसमें कारोबार कीजिए और सज़ा जेल की कोठरी है। हर काल्पनिक व्यवस्था नीचे एक प्रवर्तन के फ़र्श पर बैठी है, और वह फ़र्श लोहे, इमारतों, तनख़्वाहों और जिस्मों से बना है।

यह कारण-असर की कहानी के लिए मायने रखता है। हरारी का ब्योरा यक़ीन-पहले वाला है: कहानी फैलती है, सहयोग पीछे-पीछे आता है। क्नाप का 1905 वाला ब्योरा पैसे के लिए उल्टी दिशा में चलता है: राज्य किसी टोकन में भुगतान माँगता है, और उस टोकन की माँग पीछे-पीछे आती है। दोनों मशीनरी असली हैं। सिर्फ़ पहली वाली मानने वाला सिद्धांत यह भविष्यवाणी करेगा कि भरोसा उठते ही मुद्राएँ ढह जाती हैं; जबकि इतिहास बताता है कि मुद्राएँ सालों तक सिर्फ़ टैक्स की मजबूरी और ताक़त के दम पर भी टिकी रहती हैं, ऐसे समाजों में जहाँ कोई उन पर एक शब्द भी यक़ीन नहीं करता।

5.7 लेखक की अपनी कुर्सी की समस्या

अगर सब कुछ सामाजिक कल्पना है, तो खुद इस वाक्य का दर्जा क्या है?

यह एक भाषा में लिखा गया है, कॉपीराइट के तहत छपा है, पैसे में बिका है, और एक यूनिवर्सिटी के पद से इसे प्रामाणिकता मिली है — वाक्य के अपने हिसाब से इनमें से हर एक कल्पना है। यह अकेले में जानलेवा नहीं है; इंसान किसी व्यवस्था के अंदर से भी उसका सच्चा विवरण दे सकता है। लेकिन वाक्य उस आदमी की आवाज़ में कहा गया है जो बाहर से रिपोर्ट कर रहा हो, और वह आवाज़ उपलब्ध ही नहीं है।

इसका तीखा रूप नैतिक है। हरारी पाठकों से कहते हैं कि वे खेती के जानवरों की पीड़ा की परवाह करें — यह माँग तभी अर्थ रखती है जब कुछ मूल्य स्थानीय चलन से ऊपर हों। उनका जवाब यह है कि पीड़ा अंतर-व्यक्तिपरक नहीं है: दर्द किसी जीव द्वारा महसूस किया जाता है, किसी जाल द्वारा तय नहीं किया जाता। यह अच्छा जवाब है। और यह इस बात की स्वीकृति भी है कि कम से कम एक चीज़ गलत ख़ाने में डाल दी गई थी — और एक बार एक चीज़ बाहर निकल जाए, तो वाक्य का बचाव नहीं, दोबारा लिखा जाना ज़रूरी हो जाता है।

यहाँ दरार है — समीक्षक वाला रूप

जॉन सेक्स्टन (John Sexton) ने 2015 में **द न्यू अटलांटिस** में **सेपिएंस** की समीक्षा करते हुए यह बात सबसे तीखे ढंग से रखी: संस्कृति और नैतिक मानदंडों को बुनियादी तौर पर काल्पनिक मान लेने के बाद भविष्य के बारे में सोचने का कोई सुसंगत नैतिक ढाँचा बनाना ही नामुमकिन हो जाता है — जबकि किताब के आख़िरी अध्याय ठीक भविष्य के बारे में की गई एक अपील हैं।

5.8 सबूतों के कमज़ोर हिस्से

तीन तथ्यगत खंभे उतने मज़बूत नहीं हैं जितना आत्मविश्वास से भरा गद्य बताता है।

संज्ञानात्मक क्रांति। हरारी कल्पना करने की क्षमता के आने की तारीख़ करीब 70,000 साल पहले हुए एक संज्ञानात्मक बदलाव पर रखते हैं। यह एक वाजिब परिकल्पना है और विवादित भी; इसका कोई तयशुदा आनुवंशिक चिह्न नहीं है, अफ़्रीका में पुरातात्विक संकेत अचानक के बजाय क्रमिक है, और किताब में यह तारीख़ खुले सवाल की तरह नहीं, एक तय बिंदु की तरह काम करती है।

डनबर की संख्या। 150 लोगों की छत को एक कड़ी सीमा की तरह बरता गया है। यह बंदरों के नियोकॉर्टेक्स के आकार और समूह के आकार के बीच के एक सहसंबंध से आती है, जिसे इंसानों तक बढ़ा दिया गया। बाद के सांख्यिकीय पुनर्विश्लेषणों में विश्वास-अंतराल इतने चौड़े निकले हैं कि कुछ शोधकर्ता किसी भी ख़ास संख्या को असमर्थित मानते हैं। आम बात — कि निजी जान-पहचान बड़े पैमाने पर नहीं चलती — सुरक्षित है। ख़ास आँकड़ा एक सजावट है।

क्या बड़े देवताओं ने बड़े समाज बनाए? हरारी से जुड़ी कहानी यह है कि साझा धार्मिक मिथक ने बड़े पैमाने का सहयोग संभव किया। इसकी जाँच हो चुकी है। 2019 में हार्वे व्हाइटहाउस (Harvey Whitehouse) की अगुवाई वाली एक टीम ने **नेचर** में एक बड़े ऐतिहासिक डेटाबेस का विश्लेषण छापा, जिसमें पाया गया कि नैतिकता सिखाने वाले देवता आमतौर पर सामाजिक जटिलता के बढ़ने के **बाद** आए, पहले नहीं। ऐतिहासिक कोडिंग पर एक पद्धतिगत आलोचना के बाद वह शोध-पत्र वापस ले लिया गया — और लेखकों ने गलतियाँ सुधारकर, डेटाबेस बढ़ाकर जो पुनर्विश्लेषण किया उसमें नतीजा उसी दिशा में निकला। ईमानदार निचोड़: फ़िलहाल सबूत यह नहीं कहते कि धर्म ही पैमाने का चालक था, और सवाल इतना अनसुलझा है कि किसी को भी इसे किसी भी दिशा में तय बताकर कोट नहीं करना चाहिए।

5.9 छिपा हुआ पहलू: यह ढाँचा किसे क्या इजाज़त देता है

यह हिस्सा आमतौर पर छोड़ दिया जाता है, क्योंकि यह प्रशंसकों और आलोचकों — दोनों के लिए असहज है।

जो वाक्य अधिकारों, कानूनों और न्याय को कल्पना के ख़ाने में डाल देता है, वह किसी के भी काम आ सकता है। वह उस सरकार के उतना ही काम आता है जो कोई सुरक्षा-कवच तोड़ रही है, जितना उस नागरिक के जो उसे बचा रहा है। “मानवाधिकार तो पश्चिम की कहानी हैं” — यह असली दलील है, असली राज्य असली क़ैदियों के बारे में देते हैं, और यह वाक्य उसे सबसे कोट-योग्य रूप दे देता है। हरारी अपने शब्दों के हर

इस्तेमाल के लिए ज़िम्मेदार नहीं हैं। लेकिन जो लेखक दस करोड़ पाठकों के लिए लिख रहा हो, उसकी ज़िम्मेदारी है कि वह देखे कि उसके शब्द किसके हाथ में क्या थमा रहे हैं।

उनके पास इसका जो जवाब है, वह अच्छा है और वे देते भी हैं: यह जानना कि व्यवस्था बनाई हुई है, उसे जान-बूझकर बदलने की पहली शर्त है — वरना व्यवस्था आपको बदलती रहेगी। 1948 की घोषणा उन लोगों ने लिखी थी जो अच्छी तरह जानते थे कि वे खोज नहीं रहे, घोषणा कर रहे हैं, और उन्होंने यह तब लिखी जब दुनिया को तीन साल पहले ही यह दिख चुका था कि जब कानूनी व्यवस्था को अक्षरशः लागू किया जाए और उसके ऊपर कुछ भी न हो, तो क्या होता है। गुस्ताव राडब्रुख (Gustav Radbruch) — वह जर्मन विधिशास्त्री जो युद्ध से पहले खुद प्रत्यक्षवादी थे — ने 1946 में अपना जवाब छापा: जहाँ किसी कानून का न्याय से टकराव असहनीय हद तक पहुँच जाए, वहाँ वह कानून कानून नहीं है। यह एक बनावट का दूसरी बनावट द्वारा सोच-समझकर रद्द किया जाना है। और यही सबसे मज़बूत वजह भी है कि वाक्य को “कल्पना” शब्द पर ख़त्म नहीं करना चाहिए।

> **एक लाइन में**
>
> दरार यह नहीं है कि संस्थाएँ कैसे काम करती हैं, इस बारे में हरारी गलत हैं। इस बारे में वे सही हैं। दरार यह है कि वाक्य ठीक-ठाक काम कर रही संस्थाओं का वर्णन भ्रम की शब्दावली में करता है — और पाठक के पास शब्दावली ही बचती है।

भाग 06

हर विषय-क्षेत्र इस पर क्या कहता है

एक वाक्य, अठारह विभाग। हर एक ने इस सवाल को अपने औज़ारों से देखा है और अपना फ़ैसला सुनाया है। साथ पढ़ने पर ये किसी भी अकेले क्षेत्र से ज़्यादा बताते हैं — और ये आपस में सहमत नहीं हैं।

6.1 सामाजिक सत्ता-मीमांसा और विश्लेषणात्मक दर्शन

यह क्षेत्र — यानी सोशल ऑन्टोलॉजी, जो पूछती है कि सामाजिक चीज़ें "होती" किस अर्थ में हैं — ठीक इसी सवाल के लिए बना है, और वाक्य के प्रति सबसे कम सहानुभूति रखता है। सर्ल का जवाब है कि संस्थागत तथ्य सामूहिक स्वीकृति से बनते हैं और उसके बाद किसी भी दूसरे तथ्य जितने ही जाँचने योग्य होते हैं। **फ़ैसला: निर्भरता के बारे में सही, निष्कर्ष के बारे में गलत।**

6.2 मानवविज्ञान

संस्कृति साझा विचारों, भूमिकाओं और मानदंडों की एक व्यवस्था है। हालपाइक के मुताबिक़ इसे कल्पना कहना "रबर की कील जितना ही काम का है": यह आत्मा में यक़ीन और ट्रैफ़िक के नियम के बीच का फ़र्क़ चपटा कर देता है, जबकि वही फ़र्क़ खींचने के लिए मानवविज्ञान बना है। **फ़ैसला: बात पुरानी है; शब्द एक कदम पीछे है।**

6.3 समाजशास्त्र

दुर्खीम ने 1895 में ज़ोर दिया कि सामाजिक तथ्यों को चीज़ों की तरह बरता जाए, ठीक इसलिए कि वे व्यक्ति की इच्छा का प्रतिरोध करते हैं। बर्गर और लकमैन ने 1966 में समझाया कि इंसान की बनाई चीज़ प्राकृतिक दी-हुई चीज़ जैसी क्यों लगने लगती है। समाजशास्त्र मशीनरी से सहमत है और मिज़ाज पर आपत्ति करता है। **फ़ैसला: सही, और सौ साल पुरानी।**

6.4 मौद्रिक अर्थशास्त्र

पैसा एक स्व-पूर्ति करने वाला संतुलन है — आप इसे इसलिए लेते हैं क्योंकि बाकी लोग लेंगे — यह मानक सिद्धांत है। चार्टलिस्ट सुधार भी उतना ही मानक है: राज्य किसी टोकन में टैक्स माँगकर उस टोकन की बुनियादी माँग पैदा करता है। यक़ीन मायने रखता है; टैक्स दफ़्तर भी। **फ़ैसला: मशीनरी का आधा हिस्सा।**

6.5 खेल-सिद्धांत

लुईस और शेलिंग ने दिखाया कि चलन को सच्चाई के बारे में किसी यक़ीन की ज़रूरत ही नहीं होती — सिर्फ़ दूसरों के बारे में अपेक्षाएँ चाहिए और एक ऐसा उभरा हुआ विकल्प जिस पर सब आ जुटें। पैसे और कानून का यह ब्योरा "साझा मिथक" से ज़्यादा साफ़ है और इसमें कुछ भी काल्पनिक नहीं चाहिए। **फ़ैसला: वही परिघटना, बेहतर मशीनरी।**

6.6 कानून और विधिशास्त्र

“साझा कल्पना के बाहर कोई कानून नहीं” — यह विधिक प्रत्यक्षवाद है, यानी कानून वही है जो मान्य प्रक्रिया से निकले। यह एक बड़ी और सम्मानित स्थिति है। यह वही स्थिति भी है जो 1945 के बाद पिछड़ गई, जब नूरेम्बर्ग मुक़दमों और राडब्रुख के सूत्र ने यह सवाल फिर खोल दिया कि असहनीय रूप से अन्यायपूर्ण कानून, कानून है भी या नहीं। **फ़ैसला: एक अनसुलझी बहस का एक पक्ष, तथ्य बताकर पेश किया गया।**

6.7 राष्ट्रवाद-अध्ययन

आधुनिकतावादी — गेलनर, हॉब्सबॉम — मोटे तौर पर सहमत हैं कि राष्ट्र आधुनिक रचनाएँ हैं। एंडरसन ने “कल्पित” शब्द दिया और यह चेतावनी भी कि इसे “झूठा” न पढ़ा जाए। एंथनी स्मिथ का जातीय-प्रतीकवाद एक शर्त जोड़ता है: आधुनिक राष्ट्र आमतौर पर शून्य से नहीं, पुरानी जातीय सामग्री पर बनते हैं। **फ़ैसला: सही, इस शर्त के साथ कि कोई भी कहानी नहीं चलेगी।**

6.8 इतिहास

इतिहासकारों की शिकायत थीसिस से नहीं, कसाव से है। हालपाइक बताते हैं कि सार्वभौमिक धर्मों के उदय पर किताब का ब्योरा अक्षीय युग (Axial Age) से टकराता ही नहीं — ईसा-पूर्व पहली सहस्राब्दी का वह यूरेशियाई बदलाव जिसमें सार्वभौम नैतिक व्यवस्था का विचार ग्रीस, भारत, इज़राइल और चीन में लगभग एक साथ प्रकट हुआ। अगर मिथक मनमाने होते तो यह इत्तिफ़ाक़ समझाना मुश्किल है। **फ़ैसला: मशीनरी का ब्योरा अधूरा है।**

6.9 विकासात्मक मनोविज्ञान

राकोत्सी, वार्नेकेन और टोमासेलो: तीन साल के बच्चे दो मिनट के प्रदर्शन से नियम निकाल लेते हैं और फिर उसे किसी तीसरे पर लागू करवाते हैं। संस्था बनाना संस्कृति से देर में सीखी जाने वाली चीज़ नहीं है; यह पढ़ना सीखने से पहले चालू हो चुका होता है। **फ़ैसला: क्षमता वाले दावे को मज़बूत समर्थन, “मिथक” शब्द की जड़ कटती है।**

6.10 वानर-विज्ञान और तुलनात्मक संज्ञान

चिंपैंज़ी सहयोग करते हैं, धोखा देते हैं और वर्चस्व की श्रेणियाँ बनाए रखते हैं। वे जानकारी देने के लिए इशारा नहीं करते, सिखाते नहीं, और मनमाने नियम दूसरों पर लागू नहीं करवाते। टोमासेलो का फ़ैसला है कि किसी और प्रजाति के पास सामाजिक संस्था जैसा कुछ भी दूर-दूर तक नहीं है। **फ़ैसला: विशिष्टता वाला दावा टिकता है।**

6.11 धर्म का संज्ञानात्मक विज्ञान

दो ज़िंदा कार्यक्रम: एक, धर्म एक महँगा संकेत है जो प्रतिबद्धता को भरोसेमंद बनाता है; दूसरा, “बड़े देवताओं” की परिकल्पना कि नैतिकता सिखाने वाले देवताओं ने बड़ा पैमाना संभव किया। दूसरे को गंभीर अनुभवजन्य चोट लगी है — सबसे अच्छा उपलब्ध ऐतिहासिक डेटाबेस बताता है कि देवता जटिलता के पीछे आए, उसकी वजह नहीं बने। **फ़ैसला: कार्यात्मक कहानी संभव है, सिद्ध नहीं।**

6.12 धर्मशास्त्र और धर्म-दर्शन

यहाँ आपत्ति भक्ति की नहीं, ढाँचे की है। ईश्वर के बारे में आप जो भी निष्कर्ष निकालें, यह दावा कि "X सिर्फ़ इसलिए है क्योंकि लोग X पर यक़ीन करते हैं" वह दावा है जिसका आस्तिकता साफ़ खंडन करती है, जबकि मौद्रिक अर्थशास्त्र उसे साफ़ स्वीकार करता है। दोनों को एक ही उपवाक्य में रख देना श्रेणी की गलती है, चाहे ईश्वर के बारे में सही कोई भी हो। **फ़ैसला: सूची की पहली चीज़ वहाँ की नहीं है।**

6.13 नैतिक दर्शन

मैकी का त्रुटि-सिद्धांत हरारी की आख़िरी दो चीज़ों का परिष्कृत रूप है और इस क्षेत्र में हर कोई इसे गंभीरता से लेता है। इसका खंडन भी उतनी ही गंभीरता से लिया जाता है। अनुशासन की शिकायत स्थिति से नहीं, पेश करने के ढंग से है: दो सौ साल पुरानी ज़िंदा बहस को एक सूची के दो शब्दों में निचोड़ दिया गया। **फ़ैसला: एक जायज़ स्थिति, खोज बताकर पेश की गई।**

6.14 गणित और विज्ञान-दर्शन

वाक्य की कसौटी गणित पर लगाइए। शून्य, ऋणात्मक संख्याएँ अपरिमेय और काल्पनिक संख्याएँ न देखी जा सकती हैं, न छुई, न सूँघी, और शायद दिमागों के गायब होने पर बचेंगी भी नहीं। अगर इससे वे कल्पना हो जाती हैं, तो उनमें लिखा गया हर भौतिक सिद्धांत भी कल्पना है — वह विज्ञान भी जिसकी हरारी तारीफ़ करते हैं। **फ़ैसला: कसौटी ज़रूरत से कहीं ज़्यादा साबित कर देती है।**

6.15 भाषाविज्ञान और भाषा-दर्शन

जे. एल. ऑस्टिन (J. L. Austin) ने 1955 में दिखाया कि कुछ कथन दुनिया का वर्णन नहीं करते, उसे बदल देते हैं: "मैं वादा करता हूँ", "मैं इस जहाज़ का नाम रखता हूँ", "मैं अभियुक्त को दोषी पाता हूँ"। ये न सच होते हैं न झूठ; ये या तो चल जाते हैं या चूक जाते हैं, इस पर निर्भर करते हुए कि बोलने वाले के पास वह हैसियत है या नहीं। हरारी का जादू असल में ऑस्टिन का कार्यकारी कथन है, बस उसके साथ के साठ साल के विश्लेषण के बिना। **फ़ैसला: परिघटना असली है और बहुत पहले नाम पा चुकी है।**

6.16 प्रायोगिक और व्यवहारवादी अर्थशास्त्र

भरोसे के खेलों से पता चलता है कि अजनबियों के बीच सहयोग साझा कहानी से नहीं, साख और सज़ा से बनता और बिगड़ता है। समूह सार्वजनिक संसाधन तब बचा पाते हैं जब वे धोखेबाज़ों को सज़ा दे सकें — इससे काफ़ी हद तक बेपरवाह होकर कि वे क्या मानते हैं। **फ़ैसला: सहयोग की व्याख्या किताब के सुझाव से सस्ती है।**

6.17 लेखा और वित्त

बैलेंस शीट उन दावों को दर्ज करने की औपचारिक व्यवस्था है जो दावेदारों के जाल के सिवा कहीं मौजूद नहीं हैं — और उसका ऑडिट होता है, उस पर मुक़दमे होते हैं, और वह लागू करवाई जाती है। 2008 का संकट इसका जीता-जागता प्रदर्शन था कि अंतर-व्यक्तिपरक मूल्यांकन एक हफ़्ते में गायब हो सकता है जबकि इमारतें वहीं खड़ी रहती हैं। **फ़ैसला: पूरी तरह सहमत, और इसे लेखा कहता है।**

6.18 कंप्यूटर विज्ञान और क्रिप्टोग्राफ़ी

2009 में शुरू हुआ बिटकॉइन हरारी की थीसिस पर किया गया सबसे क़रीबी जान-बूझकर प्रयोग है: बिना राज्य, बिना संस्था और बिना किसी भरोसेमंद पक्ष के पैसा बनाने की कोशिश। उनकी जगह लेने वाली मशीनरी का नाम, बिना किसी व्यंग्य के, कंसेंसस यानी आम सहमति है। यह

कामयाब हुआ या नहीं, इस पर बहस है; इसने जो साबित किया वह यह है कि जब आप साझा सहमति हटाने की कोशिश करते हैं, तो वही काम करने वाली कोई और चीज़ दोबारा बनानी पड़ती है। **फ़ैसला: मज़बूत समर्थन, एक मोड़ के साथ — "कल्पना" ही सबसे मुश्किल हिस्सा निकली।**

· · ·

अठारहों को साथ पढ़िए

यहाँ कुछ भी हरारी के बुनियादी अवलोकन को नहीं पलटता। लगभग हर क्षेत्र इस बात की पुष्टि करता है कि छहों चीज़ें सामूहिक इंसानी गतिविधि पर टिकी हैं। यही आम सहमति है, और यह सौ साल पुरानी है।

क्षेत्र बँटते हैं निष्कर्ष पर। जो अनुशासन इन चीज़ों को क़रीब से पढ़ते हैं — सामाजिक सत्ता-मीमांसा, कानून, समाजशास्त्र, मानवविज्ञान — सब एक तीसरी श्रेणी की तरफ़ हाथ बढ़ाते हैं और "कल्पना" शब्द को ठुकराते हैं। जो अनुशासन इस क्षमता को पढ़ते हैं — विकासात्मक मनोविज्ञान, वानर-विज्ञान — हरारी की पुष्टि करते हैं और चुपचाप उनकी शब्दावली बदल देते हैं। और उनकी सूची की आख़िरी चीज़ों में सबसे बड़ा दाँव लगाने वाले दो अनुशासन — नैतिक दर्शन और धर्मशास्त्र — दोनों एक ही बात कहते हैं: यह खोज नहीं है, यह एक पक्ष है।

भाग 07

तर्क की परीक्षा, छह असली घटनाओं पर

दुनिया कैसे चलती है — इस बारे में किया गया दावा दुनिया से टकराकर बचना चाहिए। ये वे छह मौक़े हैं जब हरारी की छह चीज़ों में से कोई एक चालू हुई, बंद हुई, या सबके सामने अपनी संस्था खो बैठी। दो उन्हें सही ठहराते हैं। दो उलझाते हैं। और दो उनके सबसे मुश्किल मामले हैं।

7.1 याप: समुद्र की तह में पड़ा पैसा

पश्चिमी प्रशांत के याप द्वीप पर चूना-पत्थर की बड़ी तराशी हुई चकतियाँ, जिन्हें *राई* कहते हैं, धन का सबसे ऊँचा रूप मानी जाती थीं। सबसे बड़ी चकतियों का वज़न कई टन है और उन्हें सैकड़ों किलोमीटर दूर एक दूसरे द्वीप की खदान से लाया गया था। उन्हें हिलाना व्यावहारिक नहीं था, इसलिए मिल्कियत बिना पत्थर के हिले बदल जाती थी: सबको बस पता होता था कि अब वह किसका है।

मशहूर मामला उस पत्थर का है जो कभी पहुँचा ही नहीं। वह लौटती यात्रा में डोंगी से गिरकर गहरे पानी में डूब गया। द्वीपवासियों ने तय किया कि पत्थर उतना ही अच्छा है जितना गाँव में खड़ा होता, और वह जहाँ पड़ा था वहीं पड़े-पड़े, बिना किसी को दिखे, पीढ़ियों तक हाथ बदलता रहा।

यह क्या दिखाता है

हरारी सही हैं, सबसे मज़बूत संभव रूप में। एक ऐसी चीज़ जिसे किसी ने देखा नहीं, जिसे कोई हिला नहीं सकता, जो शायद अब मौजूद भी न हो — वह धन की तरह काम करती रही, क्योंकि समुदाय ने अपने सामूहिक दिमाग़ में हिसाब रखा हुआ था। और इसे कोई विदेशी क़िस्सा मानने से पहले: 1932 में जब फ़्रांस के बैंक को न्यूयॉर्क से सोना चाहिए था, तो फ़ेडरल रिज़र्व ने कोई सोना हिलाया ही नहीं। उसने कुछ ख़ानों पर लेबल बदल दिए। वही कारीगरी, बस बेहतर फ़ाइलिंग के साथ।

7.2 आयरलैंड, 1970: साढ़े छह महीने बिना बैंक

1 मई से 17 नवंबर 1970 तक एक औद्योगिक विवाद ने आयरलैंड के सारे प्रमुख बैंक बंद करा दिए। जनता की पहुँच से मुद्रा-आपूर्ति का करीब 85 प्रतिशत हिस्सा बाहर हो गया। हर अनुमान कह रहा था कि अर्थव्यवस्था जाम हो जाएगी।

वह जाम नहीं हुई। लोग उन खातों पर चेक लिखते रहे जो क्लियर हो ही नहीं सकते थे, और जब छपे हुए चेक ख़त्म हो गए तो जो काग़ज़ हाथ लगा उसी पर उधारी की पर्चियाँ लिख दीं। पब और दुकानें ही क्लियरिंग सिस्टम बन गईं, क्योंकि पब वाला जानता है कि चालीस पाउंड के लिए किस पर भरोसा किया जा सकता है। जिन अर्थशास्त्री एंतोइन मर्फ़ी (Antoin Murphy) ने इसका अध्ययन किया, उन्होंने इसे संस्थागत व्यवस्था की जगह ले लेने वाली एक बेहद निजी उधार-व्यवस्था बताया, जो इस भारी जानकारी के भंडार पर टिकी थी कि इलाक़े में किस पर भरोसा किया जा सकता है।

यह वाक्य को कहाँ उलझाता है

पैसा संस्था के ध्वस्त होने के बाद भी बचा रहा — यह हरारी की ही बात है। लेकिन देखिए वह बचा किस चीज़ पर। किसी मिथक पर नहीं, किसी साझा कहानी पर नहीं, किसी यक़ीन पर नहीं। वह ठोस, जाँची जा सकने वाली, स्थानीय जानकारी पर चला — ख़ास इंसानों के बारे में जानकारी, ऐसे लोगों के पास जिनके पास उसे सही रखने की पूरी व्यापारिक वजह थी। पब वाला कल्पना नहीं कर रहा था। वह गारंटी दे रहा था। किसी काल्पनिक व्यवस्था को छीलकर उसकी बुनियाद तक जाइए, तो नीचे और कल्पना नहीं मिलती। सूचना मिलती है।

7.3 ज़िम्बाब्वे, 2008: तीर किस तरफ़ चलता है?

ज़िम्बाब्वे की महँगाई नवंबर 2008 में चरम पर पहुँची — सालाना दर का अनुमान 89.7 सेक्सटिलियन प्रतिशत था, यानी 89.7 के बाद इक्कीस शून्य। एक सौ ट्रिलियन के नोट छपे। अप्रैल 2009 में सरकार ने मुद्रा छापना ही बंद कर दिया और अर्थव्यवस्था डॉलर पर चली गई: लोग अमेरिकी डॉलर, दक्षिण अफ़्रीकी रैंड — जो भी टिका रहे, उसी का इस्तेमाल करने लगे।

अगर सिर्फ़ यक़ीन वाला ब्योरा मानें, तो यह लोगों के यक़ीन छोड़ देने की कहानी है। लेकिन क्रम उल्टा चलता है। सरकार ने नोट छापे; क़ीमतें चढ़ीं; लोगों ने अपनी बचत को अपनी आँखों के सामने भाप बनते देखा; और तभी उन्होंने मुद्रा छोड़ी। यक़ीन आख़िरी डोमिनो था, पहला नहीं।

यह वाक्य को कहाँ उलझाता है

अगर पैसा सिर्फ़ एक साझा कहानी होता, तो मुद्रा तब मरती जब कहानी का जादू उतर जाता। असल में मुद्राएँ गणित से मरती हैं: बहुत ज़्यादा नोट, बहुत कम सामान। और उल्टा भी सच है — मुद्राएँ लोगों के सारा सम्मान खो देने के बाद भी लंबे समय तक टिकी रहती हैं, बशर्ते टैक्स दफ़्तर उन्हीं की माँग करता रहे। कल्पना असली है, पर वह किसी ऐसी चीज़ के नीचे बहती है जो ज़रा भी काल्पनिक नहीं है।

7.4 लंदन, 1897: शब्दों से बना एक व्यक्ति

चमड़े के व्यापारी एरॉन सैलोमन ने अपना कारोबार कंपनी में बदला और लगभग सारे शेयर अपने पास रखे। कारोबार डूब गया। कर्ज़दाताओं ने दलील दी कि कंपनी दिखावा है — कि वह असल में दूसरे नाम से सैलोमन ही है, और कर्ज़ उसे ही चुकाना चाहिए।

हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स ने सर्वसम्मति से असहमति जताई। एक बार विधिवत पंजीकृत हो जाने पर कंपनी को एक अलग कानूनी व्यक्ति मानना होगा, जिसके अपने अधिकार होंगे और अपनी देनदारियाँ। लॉर्ड हैल्सबरी ने कहा कि उसे किसी भी दूसरे व्यक्ति की तरह बरता जाएगा। कर्ज़दाताओं को पैसा नहीं मिला।

आज धरती का लगभग हर बड़ा उद्यम उसी फ़ैसले पर खड़ा है। और यह ठीक वही है जिसका वर्णन हरारी करते हैं: उस दिन दुनिया में एक नया व्यक्ति आया जिसके पास न शरीर था न दिमाग़, जिसे एक दस्तावेज़ ने जन्म दिया, और अदालतें तब से उसे असली मानकर बरत रही हैं।

यह क्या दिखाता है — और पूँछ में डंक

हरारी सही हैं कि उस दिन कुछ हाज़िर किया गया था। लेकिन ध्यान दीजिए: लॉर्ड्स धोखे में नहीं थे और होने का नाटक भी नहीं कर रहे थे। वे ठीक-ठीक जानते थे कि वे एक नीतिगत वजह से एक कानूनी औज़ार अपना रहे हैं — कि सीमित देनदारी आम लोगों को पूँजी दाँव पर लगाने देती है, बिना सब कुछ दाँव पर लगाए। यह "मंत्र" कानून की किताब में छपा हुआ है, और एक सौ तीस साल से चल रहा है, बिना किसी को एक पल के लिए भी धोखा दिए। यह जादू नहीं है। यह इंजीनियरिंग है।

7.5 यूगोस्लाविया, 1991–92: एक राष्ट्र का स्विच बंद

जून 1991 और अप्रैल 1992 के बीच करीब दो करोड़ तीस लाख लोगों का एक देश ख़त्म हो गया। भौतिक रूप से कुछ भी नहीं घटाया गया। पहाड़, कारख़ाने, सड़कें और लोग — सब वहीं रहे। जो ख़त्म हुआ वह एक-दूसरे को मन में रखने का एक तरीक़ा था।

जनगणना ने इसे पकड़ लिया। जो लोग अपनी राष्ट्रीयता "यूगोस्लाव" लिखवाते थे — सर्ब, क्रोएट, बोस्नियाक या स्लोवीन नहीं — उनकी संख्या युद्ध के बाद के दशकों में बढ़कर 1981 तक करीब बीस में से एक हो गई थी, फिर 1991 की गिनती तक गिरकर लगभग तीन प्रतिशत रह गई। राज्य से पहले वह ख़ाना ख़ाली हुआ। उसकी जगह दूसरे कल्पित समुदाय आए, और वे ज़मीन के लिए लड़ पड़े।

यह क्या दिखाता है

हरारी के पास मौजूद सबसे साफ़ पुष्टि। राष्ट्र कोई जगह नहीं है; वह पहचानने का एक साझा काम है, और जब पर्याप्त लोग वह पहचान वापस ले लेते हैं तो वह जल्दी रुक जाता है। एंडरसन की शर्त फिर भी क़ायम है: वे लोग किसी कल्पना से जागकर हक़ीक़त में नहीं आ रहे थे। वे एक कल्पित समुदाय से दूसरे में जा रहे थे, और नए समुदाय अपने सदस्यों को ठीक उतने ही प्राचीन और सवालों से परे लगते थे जितना पुराना लगता था।

7.6 नूरेम्बर्ग और पेरिस, 1945–48: सबसे मुश्किल मामला

यह वह घटना है जिसे यह वाक्य सबसे बुरी तरह संभालता है, और इसे धीरे-धीरे देखना ज़रूरी है।

1933 और 1945 के बीच जर्मन राज्य ने बेदाग़ प्रक्रिया के ज़रिए एक ऐसी कानूनी व्यवस्था खड़ी की जिसके तहत सामूहिक हत्या वैध थी। इसकी हर बात प्रत्यक्षवादी कसौटी पर खरी उतरती थी: मान्य सत्ता द्वारा बनाई गई, प्रकाशित, और प्रशिक्षित जजों द्वारा लागू की गई। अगर कानून सिर्फ़ वही है जो प्रक्रिया से निकले — अगर साझा कल्पना के बाहर कोई कानून नहीं है — तो वे कानून कानून ही थे, और जिन लोगों ने उनका पालन किया उन्होंने कुछ भी नहीं तोड़ा।

दुनिया ने यह मानने से इनकार कर दिया। 1945 से चले नूरेम्बर्ग मुक़दमों ने राज्य के अधिकारियों को उन कामों के लिए ज़िम्मेदार ठहराया जो उनके अपने घरेलू कानून के तहत वैध थे। 1946 में गुस्ताव राडब्रुख — वह विधिशास्त्री जो युद्ध से पहले खुद प्रत्यक्षवादी थे — ने वह सूत्र छापा जिसे बाद में जर्मन अदालतों ने इस्तेमाल किया: लिखित कानून अन्यायपूर्ण होने पर भी लागू रहेगा, सिवाय तब जब कानून और न्याय का टकराव असहनीय हो जाए — उस बिंदु पर कानून हट जाता है। दिसंबर 1948 में अड़तालीस राज्यों ने ऐसे अधिकारों की सूची घोषित की जिन्हें कोई प्रक्रिया छीन नहीं सकती।

यह मामला मुश्किल क्यों है

हरारी के वाक्य के हिसाब से यह एक कल्पना का दूसरी कल्पना को रद्द करना है, और इस बारे में कोई तथ्य है ही नहीं कि कौन-सी बेहतर थी — सिर्फ़ यह कि किसके पीछे ज़्यादा लोग थे। यह एक सुसंगत स्थिति है और एक डरावनी स्थिति भी। और यह वह भी नहीं है जो उसमें शामिल लोग सोच रहे थे, न वह जो फ़ैसलों में लिखा है, और न वह ज़मीन जिस पर कोई खड़ा था। उन सब लोगों का मानना था कि उन्होंने कानून की किताब से ऊपर कुछ पा लिया है। हो सकता है वे गलत हों। लेकिन वाक्य यह दिखाता नहीं कि वे गलत थे; वह इसे बस मान लेता है, और फिर बीसवीं सदी का सबसे बड़ा परिणामकारी कानूनी काम महज़ एक कहानी का बदल जाना बन जाता है।

ईमानदारी से यह भी जोड़ना चाहिए कि वह घोषणा भी, साफ़ तौर पर, एक रचना थी। उसके लिए वोट कराना पड़ा। आठ राज्यों ने मतदान से दूरी बनाई, और हर एक की वजह बता देती थी कि वह अपने घर में क्या खड़ा कर रहा है। तब से उसका अधिकार इसी से आया है कि राज्य उसे बाध्यकारी मानकर बरतते हैं। दोनों बातें एक साथ सच हैं, और ठीक इसीलिए तीसरा बक्सा मायने रखता है: वह घोषणा इंसान की रचना भी है और ऐसा पैमाना भी जिसका आप वस्तुपरक ढंग से उल्लंघन कर सकते हैं।

· · ·

छहों के अंक

याप और यूगोस्लाविया: हरारी साफ़-साफ़ सही। सैलोमन: मशीनरी के बारे में सही, जादू के बारे में गलत। आयरलैंड और ज़िम्बाब्वे: यह सही कि पैसा सहमति है, यह गलत कि सहमति हवा में तैरती है — उसके नीचे सूचना, गणित और टैक्स बैठे हैं। नूरेम्बर्ग: वाक्य एक जवाब देता है, और सोच-समझकर देखें तो वह जवाब ज़्यादातर लोग देना नहीं चाहेंगे।

भाग 08

वह काल्पनिक व्यवस्था जिसमें आप इस वक़्त खड़े हैं

अगर यह मशीनरी असली है, तो वह प्राचीन दुनिया में रुकी नहीं। यह भाग एक व्यावहारिक औज़ार है: कैसे पता करें कि आप किन नियमों के नीचे जी रहे हैं, हर नियम किस किस्म का है, और उन्हें असल में बदलता क्या है — क्योंकि उन्हें “देख लेना” नहीं बदलता।

पहला क़दम: छाँटिए कि मामला किस चीज़ से है

हरारी के पास हर चीज़ के लिए एक ही शब्द है। यही वाक्य को यादगार बनाता है और यही उसे उस पल बेकार कर देता है जब आप उससे कुछ करने चलते हैं। असल में आपकी ज़िंदगी में तीन किस्म के नियम होते हैं, तीनों का बर्ताव बिल्कुल अलग है, और इन्हें आपस में गड्डमड्ड कर देना इस अध्याय को पढ़ने के बाद की जाने वाली सबसे आम गलती है।

किस्म	पहचानें कैसे	असल में इसे बदलता क्या है
विश्वास	लोग इसे सच मानते हैं। “यह गढ़ा हुआ है” कहना हमले जैसा महसूस होता है।	सबूत, अनुभव, मत-परिवर्तन, पीढ़ी का बदलना। धीमा। अक्सर कभी नहीं।
चलन	सबको पता है कि यह मनमाना है और फिर भी सब निभाते हैं, क्योंकि बाकी सब निभाते हैं।	एक साथ किया गया बदलाव। अकेले कोई पहले नहीं हिलता; सब एक साथ एक ही पल में हिल सकते हैं।
दबाव	सज़ा हट जाए तो आप कल ही करना बंद कर देंगे।	सज़ा बदलना, या सज़ा देने वालों को बदलना। यक़ीन का इससे कोई लेना-देना नहीं।

आसान भाषा में

चलन से बहस करना साँस की बर्बादी है — कोई आपसे असहमत ही नहीं है, बस वे अकेले हिल नहीं सकते। दबाव से बहस करना बेकार से भी बदतर है — लागू करने वाले को आपकी सहमति चाहिए ही नहीं। बहस सिर्फ़ विश्वास से की जा सकती है, और तीनों में वही सबसे धीमा है।

दूसरा क़दम: बोझ उठाने वाले नियम ढूँढ़िए

आप जिन नियमों के नीचे जीते हैं, उनमें से ज़्यादातर मामूली हैं। कुछ छत को थामे हुए हैं। भाग 04 वाली कसौटी इन्हें अलग करने का सबसे तेज़ तरीक़ा है, और इसमें कुछ ख़र्च नहीं होता:

> **ख़ाली-नज़र वाली कसौटी**
>
> नियम को ज़ोर से ऐसे बोलिए मानो वह वैकल्पिक हो, और प्रतिक्रिया देखिए। हल्की दिलचस्पी का मतलब है वह सजावटी है। उलझन भरी नज़र — जैसे आपने पूछ लिया हो कि पानी गीला क्यों होता है — का मतलब है आपको बोझ उठाने वाला नियम मिल गया। चिढ़ का मतलब है आपको ऐसा बोझ उठाने वाला नियम मिल गया जिससे इस वक़्त किसी का फ़ायदा हो रहा है।

यह काम इसलिए करता है क्योंकि इसके पीछे भाग 04 वाली मशीनरी है। जिन नियमों पर अब भी बहस होती है, वे अब भी दिखाई देते हैं, और दिखाई देने वाले नियम कमज़ोर होते हैं। जो नियम सवाल रहना बंद कर चुके हैं, वही ढाँचे का काम कर रहे हैं — और वे सवाल रहना ठीक इसलिए बंद कर चुके हैं क्योंकि आपके आस-पास के सारे लोग भी उन्हीं के भीतर पले हैं।

तीसरा क़दम: जानिए कि व्यवस्था को असल में बदलता क्या है

यह इसका व्यावहारिक दिल है, और यह वाक्य के सुझाव के बिल्कुल उलट है। यह समझ लेना कि कोई चीज़ बनाई हुई है, कुछ भी नहीं बदलता। ज़िम्बाब्वे में सबको पता था कि मुद्रा काग़ज़ है। इससे कोई मदद नहीं मिली। आयरलैंड के पब वालों को पता था कि चेक एक वादा भर है। उन्होंने फिर भी भुनाया।

काल्पनिक व्यवस्था ठीक चार रास्तों से बदलती है, और सिर्फ़ चार से:

1. **तालमेल में बँधा अल्पमत।** बहुमत नहीं — एक ऐसा गुट जो इतना बड़ा और इतना दिखाई देने वाला हो कि बाकी लोग उम्मीद करने लगें कि यह टिकेगा। चलन तेज़ी से पलटते हैं, बशर्ते लोगों को लगे कि दूसरे भी पलट रहे हैं। यही इकलौता तेज़ रास्ता है।
2. **एक नया केंद्र-बिंदु।** कोई ऐसा विकल्प सामने रखे जो इतना ज़ाहिर हो कि अजनबी भी बिना बातचीत किए उस पर आ जुटें। बदलाव की ज़्यादातर कोशिशें यहीं मरती हैं: उनके पास आलोचना होती है, विकल्प नहीं, इसलिए लोगों के जुटने के लिए कुछ होता ही नहीं।
3. **प्रवर्तन में बदलाव।** जहाँ नियम दबाव है, वहाँ बहस सजावट है। मायने यह रखता है कि सज़ा किसके हाथ में है। यह रास्ता धीमा है, संस्थागत है, और यही वह रास्ता है जिससे ज़्यादातर सुधारक कतराते हैं क्योंकि यह उबाऊ है।
4. **पीढ़ियों का बदलना।** जहाँ नियम विश्वास है, वहाँ वह आमतौर पर बदलता नहीं; मानने वालों की जगह ऐसे लोग ले लेते हैं जो अलग हालात में पले हैं। यह जवाब किसी को पसंद नहीं आता। इतिहास में सबसे ज़्यादा यही चला है।

ध्यान दीजिए कि "यह समझ लेना कि यह कल्पना है" इस सूची में है ही नहीं। यह ज़्यादा से ज़्यादा दूसरे रास्ते की पहली शर्त है, और अकेले में यह सिर्फ़ एक ऐसा इंसान पैदा करता है जो पार्टियों में चिढ़ा हुआ रहता है।

दो जाल, जिनसे बचना है

सनकी का जाल। इस वाक्य को हर चीज़ से हाथ खींच लेने की आम इजाज़त में बदलना बहुत आसान है। अगर सब कुछ गढ़ा हुआ ही है, तो किसी चीज़ में मेहनत क्यों? इस अध्याय को पढ़ने का यह सबसे आम नतीजा है और सबसे बेकार भी। "यह बनाया हुआ है" से सही निष्कर्ष यह निकलता है कि इसे अलग तरह से भी बनाया जा सकता है — यानी यह काम करने का बुलावा है, काम से छुट्टी नहीं।

नई शुरुआत का भ्रम। यह मान लेना कि व्यवस्था को साफ़ करके उसकी जगह कुछ तर्कसंगत और बोझ-मुक्त रखा जा सकता है। इतिहास में ऐसी हर कोशिश एक नई व्यवस्था पैदा करती है, आमतौर पर पहले से ज़्यादा दबाव के साथ, क्योंकि पुरानी व्यवस्था जो तालमेल मुफ़्त में दे रही थी उसे अब जल्दबाज़ी में बनाना पड़ता है। आपके सामने कभी भी "काल्पनिक व्यवस्था बनाम कोई व्यवस्था नहीं" का विकल्प नहीं होता। आपके सामने "यह वाली बनाम अगली वाली" होता है, और अगली वाली को इस वाली के गिरने से पहले बना लेना पड़ता है।

रखने लायक रूप

आप बाहर क़दम नहीं रख सकते। आप मेहनत करके इतना ज़रूर कर सकते हैं: जिस चीज़ के भीतर हैं उसकी रूपरेखा देख लें, उसके एक-दो बोझ उठाने वाले नियमों को नाम दे दें, तय कर लें कि हर एक तीन में से किस किस्म का है, और फिर उससे मेल खाता रास्ता अपनाएँ। यह छोटी, बिना चमक-दमक वाली, और वाकई उपलब्ध ताक़त है। और यही अकेली उपलब्ध है।

चार सवाल, किसी भी ऐसी चीज़ के लिए जिसके भीतर आप हैं

1. यहाँ वह कौन-सा नियम है जिसे कोई बोलता नहीं, क्योंकि सब उसे मान चुके हैं?
2. वह विश्वास है, चलन है, या दबाव? (कसौटी: सज़ा हट जाए तो क्या यह बचेगा? सब मान लें कि यह मनमाना है, तो क्या यह बचेगा?)
3. इसके क़ायम रहने से इस वक़्त किसका फ़ायदा हो रहा है, और यह हिला तो वे क्या करेंगे?
4. अगर मुझे इसे बदलना है — तो वह विकल्प क्या है जो इतना ठोस हो कि अजनबी कल ही उस पर आ जुटें, बिना मुझसे मिले?

चौथा सवाल ही असली सवाल है। उसका जवाब न हो तो आपके पास योजना नहीं है। आपके पास आलोचना है, और आलोचनाएँ व्यवस्थाएँ नहीं हिलातीं। व्यवस्थाओं को दूसरी व्यवस्थाएँ हिलाती हैं।

भाग 09

अंकतालिका, और वाक्य का नया रूप

बारह मान्यताएँ अंदर गई थीं। यह रहा जो बाहर निकला — हर एक पर ईमानदार निशान लगाकर, उन पर भी जो बच नहीं पाईं।

#	मान्यता	फ़ैसला	क्यों
1	चीज़ें सिर्फ़ दो किस्म की हैं: दिमाग़ से स्वतंत्र, या गढ़ी हुई	नाकाम	तीसरा बक्सा — सहमति से बनी, फिर पूरी तरह जाँचने योग्य — मानक है, विस्तार से खुला हुआ है, और खुद हरारी के अध्याय 6 में मौजूद है।
2	"क्या यह दिमागों के बिना बचेगी?" — यही होने की कसौटी है	नाकाम	सब पर एक-सी लगाई जाए तो यह गणित, भाषा, वादे और सच्चाई — सबको मिटा देती है। जो कसौटी ज़रूरत से ज़्यादा साबित करे, वह कुछ भी साबित नहीं करती।
3	सूची की छहों चीज़ें एक ही किस्म की हैं	श्रेणी की गलती	पैसा यक़ीन से बना है; ईश्वर के बारे में दावा है कि वह यक़ीन से स्वतंत्र है; अधिकारों पर विवाद है। तीन तर्क-पद्धतियाँ, एक उपवाक्य।
4	यक़ीन ही मशीनरी है	आंशिक	वैधता और धर्म के लिए सच। मुद्राएँ और ट्रैफ़िक के नियम तालमेल और प्रवर्तन पर चलते हैं, यक़ीन वैकल्पिक है।
5	इन सबके लिए "कल्पना" ही सही शब्द है	नाकाम	विश्वास गढ़ा हुआ साबित होते ही ढह जाता है; चलन नहीं ढहता। यही फ़र्क़ पूरा विषय है।
6	कल्पना से बना, यानी मनमाना	नाकाम	व्यवस्थाएँ लगातार छँटनी में हैं। ज़्यादातर मरती हैं। चल सकने वाले इंतज़ामों का दायरा तंग है और उसकी हदें ग़ैर-काल्पनिक चीज़ों से बँधी हैं।
7	कल्पना से बना, यानी बाध्यकारी नहीं	नतीजा नहीं निकलता	शतरंज गढ़ा हुआ है और ऊँट फिर भी सीधा नहीं चल सकता। उत्पत्ति अधिकार के बारे में कुछ नहीं बताती।
8	लेखक इससे बाहर खड़ा हो सकता है	उपलब्ध नहीं	वे इसे आधा मान लेते हैं — नैतिकता की जड़ अधिकारों के बजाय महसूस की गई पीड़ा में रखकर, जो चुपचाप उनकी अपनी सूची से एक चीज़ हटा देता है।
9	यह काम सिर्फ़ इंसान करते हैं	टिकती है	आस-पास के सारे दावों में सबसे ज़्यादा समर्थित। तीन साल के बच्चे गढ़े हुए नियम तीसरों पर लागू करवाते हैं; कोई और प्रजाति इसके आस-पास कुछ नहीं करती।
10	साझा कल्पना के बिना बड़े पैमाने का सहयोग नहीं	बढ़ा-चढ़ाकर	निजी जान-पहचान की छत असली है; 150 का आँकड़ा सजावट है; और क़ीमतें, रिश्तेदारी तथा ताक़त बिना साझा यक़ीन के भी पैमाना बना लेती हैं।

#	मान्यता	फ़ैसला	क्यों
11	यक़ीन हटा लीजिए, चीज़ गायब	**टिकती है, एक शर्त के साथ**	आख़िरी हद तक सच। व्यवहार में यक़ीन आमतौर पर आख़िरी डोमिनो होता है, पहला नहीं — ज़िम्बाब्वे की मुद्रा गणित से मरी।
12	न्याय और मानवाधिकार पैसे के साथ रखे जाएँ	**मूल्य हैं, तथ्य नहीं**	गंभीर विरोधियों वाली एक गंभीर दार्शनिक स्थिति, ऐसे पेश की गई मानो इतिहास ने इसका फ़ैसला कर दिया हो। इतिहास इसका फ़ैसला कर ही नहीं सकता।

· · ·

वाक्य, ईमानदारी से दोबारा लिखा हुआ

हरारी ने लिखा था: “ब्रह्मांड में न कोई ईश्वर है, न कोई राष्ट्र, न पैसा, न मानवाधिकार, न कानून और न न्याय — इनमें से कुछ भी इंसानों की साझा कल्पना के बाहर मौजूद नहीं है।” ऊपर की सारी बातों के बाद, यह रहा वह रूप जो इस दस्तावेज़ की हर आपत्ति से बच जाता है:

> राष्ट्र, पैसा, कानून और कंपनियाँ ब्रह्मांड का हिस्सा नहीं हैं। ये पूरी तरह उसी चीज़ से बनी हैं जो पर्याप्त लोग करते चले जाते हैं, इन्हें प्रक्रिया से बनाया और ख़त्म किया जा सकता है, और दुनिया की किसी और बड़ी चीज़ में यह गुण नहीं है। इससे ये कल्पना नहीं बन जातीं। इससे ये उन विशाल, ताक़तवर और बेरहम चीज़ों की इकलौती श्रेणी बन जाती हैं जिनके लिए इंसान पूरी तरह जवाबदेह हैं। न्याय और मानवाधिकार उस सूची में आते हैं या नहीं — यह मौजूद सबसे पुराने खुले सवालों में से एक है, और उन्हें वहाँ रख देना एक फ़ैसला है, कोई खोज नहीं।

यह रूप कम कोट-योग्य है। यह सच भी है, और वही काम करता है: यह उस इंतज़ाम से उसका स्वाभाविक होना छीन लेता है जिसमें आप खड़े हैं — बिना यह नाटक किए कि वह इंतज़ाम कोई सपना है जिससे आप जाग सकते हैं।

हरारी ने क्या सही पकड़ा, साफ़ शब्दों में

आपत्तियों पर ख़त्म करना बेईमानी होगी, क्योंकि बुनियादी अवलोकन सही है और ज़्यादातर लोगों तक यह वाकई पहुँचा नहीं है।

- इंसानी ज़िंदगी के सबसे बड़े ढाँचों का कोई भौतिक अस्तित्व नहीं है और उन्हें सिर्फ़ इंसानों के लगातार चलते बर्ताव ने थाम रखा है।
- इन्हें घोषणा से बनाया और मिटाया जा सकता है, जो किसी भौतिक चीज़ के साथ नहीं हो सकता।
- भीतर से ये स्वाभाविक और अनिवार्य महसूस होती हैं, और यही इनके चलने की शर्त है।
- आप इन्हें छोड़ नहीं सकते — सिर्फ़ एक से दूसरी में जा सकते हैं।
- यह सब सिर्फ़ इंसान करते हैं, और यह क्षमता तीन साल की उम्र तक चालू हो चुकी होती है।

पाँच सच्ची बातें, एक ऐसी किताब में जिसे दस करोड़ लोगों ने पढ़ा। यह असली जनसेवा है, और वाक्य की गलतियाँ इसे रद्द नहीं करतीं।

आख़िरी कहने लायक बात

लोग इस अध्याय पर ऐसे बहस करते हैं मानो सवाल यह हो कि पैसा असली है या नहीं। सवाल यह है ही नहीं। पैसा उसी अर्थ में असली है जो अकेला मायने रखता है — कि उसके बिना आप खा नहीं सकते।

यह अध्याय असल में जो सवाल उठाता है वह **जवाबदेही** का है। अगर राष्ट्र, कानून और बाज़ार ब्रह्मांड की विशेषताएँ होते — मौसम की तरह, गुरुत्वाकर्षण की तरह — तो उनके लिए कोई ज़िम्मेदार न होता, और अकेला समझदार जवाब होता खुद को उनके हिसाब से ढाल लेना। अगर ये उस चीज़ से बनी हैं जो लोग करते चले जाते हैं, तो कोई ज़िम्मेदार है, और वह ज़िम्मेदारी सिर्फ़ उन पर नहीं है जिन्होंने इन्हें डिज़ाइन किया। वह हर उस आदमी पर है जो आज भी वही काम कर रहा है।

इसीलिए शब्दावली इतनी मायने रखती है, और इसीलिए एक शब्द इतने पन्नों के लायक है। इन चीज़ों को कल्पना कहिए और स्वाभाविक प्रतिक्रिया होगी — खुद को चतुर महसूस करना और एक क़दम पीछे हट जाना। इन्हें वही कहिए जो ये हैं — रचनाएँ, चलन, संस्थागत तथ्य, इकलौती उपलब्ध इमारत की बोझ उठाने वाली दीवारें — और स्वाभाविक प्रतिक्रिया होगी यह पूछना कि इन्हें कौन थामे हुए है, किन शर्तों पर, और कहीं आप भी उन थामने वालों में तो नहीं हैं।

> **पूरी बात का सार**
>
> जिस व्यवस्था को आप नाम नहीं दे सकते, उसके लिए आप जवाबदेह भी नहीं हो सकते। हरारी का अध्याय अपनी ख़ामियों के बावजूद इसलिए क़ीमती है कि वह व्यवस्था को दिखाई दे जाने लायक बना देता है। यह रख लीजिए, और कल्पना शब्द छोड़ दीजिए — क्योंकि जिस पल ये चीज़ें कल्पना बन जाती हैं, उस पल इन्हें थामे रखना किसी की ज़िम्मेदारी नहीं रह जाती, और थामे तो इन्हें आप ही हुए हैं।

परिशिष्ट

शब्दावली, समय-रेखा और स्रोत

इस दस्तावेज़ में इस्तेमाल हुआ हर शब्द, एक-एक लाइन में समझाया हुआ। फिर तारीख़ें, फिर यह कि यह सब आया कहाँ से।

शब्दावली

शब्द	सीधा मतलब
मान्यता (axiom)	वह चीज़ जिसे तर्क शुरू होने से पहले मान लेना पड़ता है। तर्क के नीचे का फ़र्श।
स्टीलमैन (steelman)	जिस तर्क से आप असहमत हैं, उसका सबसे मज़बूत संभव रूप। स्ट्रॉमैन का उल्टा।
काल्पनिक व्यवस्था (imagined order)	हरारी का शब्द — कानून, पैसा, ऊँच-नीच जैसा कोई साझा इंतज़ाम, जो इसलिए है क्योंकि पर्याप्त लोग उसे मानकर बरतते हैं।
अंतर-व्यक्तिपरक (inter-subjective)	बहुत सारे दिमागों के जाल में मौजूद। न एक सिर में (वह व्यक्तिपरक है), न सिरों से स्वतंत्र (वह वस्तुपरक है)।
संस्थागत तथ्य (institutional fact)	सर्ल का शब्द, इसी चीज़ के लिए: सामूहिक स्वीकृति से बना तथ्य, जैसे "यह दस रुपये का नोट है"।
दर्जा-कार्य (status function)	वह काम जो कोई चीज़ सिर्फ़ इसलिए कर पाती है क्योंकि लोग मानते हैं कि वह करती है — काग़ज़ का पैसा होना, किसी इंसान का जज होना।
अस्तित्व की दृष्टि से व्यक्तिपरक (ontologically subjective)	इसका होना दिमागों पर टिका है।
ज्ञान की दृष्टि से वस्तुपरक (epistemically objective)	इसके बारे में आप सीधे-सीधे सही या गलत हो सकते हैं, चाहे आप कुछ भी महसूस करें।
चलन (convention)	वह नियम जिसे हर कोई इसलिए निभाता है क्योंकि बाकी सब निभाते हैं। कोई नहीं मानता कि यह किसी चीज़ का विवरण है।
विश्वास (belief)	दुनिया के बारे में सच मानी गई कोई बात। मानने वाला जब स्वीकार कर ले कि यह गढ़ी हुई थी, तो यह आमतौर पर ढह जाता है।
तालमेल की समस्या (coordination problem)	ऐसी स्थिति जहाँ आपको क्या करना चाहिए, यह पूरी तरह इस पर टिका हो कि बाकी लोग क्या करते हैं। सड़क का कौन-सा किनारा; कौन-सी मुद्रा।
केंद्र-बिंदु (focal point)	वह विकल्प जिस पर लोग बिना चर्चा किए आ जुटते हैं, क्योंकि वह अलग से दिखता है। शेलिंग का शब्द।
कार्यकारी कथन (performative utterance)	वे शब्द जो कुछ वर्णन नहीं करते, कुछ कर देते हैं: "मैं वादा करता हूँ", "मैं इस जहाज़ का नाम रखता हूँ", "दोषी"। ऑस्टिन का शब्द।

शब्द	सीधा मतलब
सामाजिक तथ्य (social fact)	दुर्खीम का शब्द — काम करने का वह तरीक़ा जो किसी व्यक्ति से बाहर मौजूद है और उस पर दबाव डालता है।
लूपिंग असर (looping effect)	हैकिंग का शब्द — किसी किस्म के इंसान को नाम देने से वे इंसान बदल जाते हैं, जिससे नाम को दोबारा गढ़ना पड़ता है।
उत्पत्ति का तर्कदोष (genetic fallacy)	किसी दावे के सही होने का फ़ैसला इस आधार पर करना कि वह आया कहाँ से। हमेशा अवैध।
द्व्यर्थता (equivocation)	एक ही तर्क के भीतर एक शब्द को दो अलग अर्थों में इस्तेमाल करना, ताकि कमज़ोर दावा मज़बूत दावे की ताक़त उधार ले ले।
विधिक प्रत्यक्षवाद (legal positivism)	यह मत कि कानून वही है जो मान्य प्रक्रिया से निकले, और नैतिकता उससे अलग सवाल है।
प्राकृतिक विधि (natural law)	यह मत कि बनाए गए कानून से ऊपर भी एक पैमाना है, जिस पर कसकर बनाए गए कानून को अवैध ठहराया जा सकता है।
राडब्रुख सूत्र (Radbruch formula)	1946 का वह नियम कि जब कानून और न्याय का टकराव असहनीय हो जाए, तब कानून हट जाता है।
नैतिक यथार्थवाद (moral realism)	यह मत कि कुछ चीज़ें सही या गलत होती हैं, चाहे कोई कुछ भी सोचे।
त्रुटि-सिद्धांत (error theory)	मैकी का मत कि नैतिक कथन ईमानदारी से कहे जाते हैं और फिर भी सब झूठे हैं, क्योंकि उन्हें सच बनाने वाले वस्तुपरक मूल्य हैं ही नहीं।
चार्टलिज़्म (chartalism)	यह मत कि पैसे की क़ीमत इससे आती है कि राज्य उसे टैक्स में स्वीकार करता है।
कॉर्पोरेट व्यक्तित्व (corporate personality)	वह कानूनी नियम कि पंजीकृत कंपनी अपने मालिकों से अलग एक व्यक्ति है, अपने कर्ज़ों के साथ।
साझा नीयत (shared intentionality)	टोमासेलो का शब्द — किसी और के साथ मिलकर एक ही लक्ष्य मन में रखने की इंसानी क्षमता, जो संस्थाओं की जड़ है।
डनबर की संख्या (Dunbar's number)	करीब 150 स्थिर निजी रिश्तों की प्रस्तावित छत। ख़ूब कोट की जाती है, सांख्यिकीय रूप से विवादित है।
जातीय-प्रतीकवाद (ethno-symbolism)	एंथनी स्मिथ का पक्ष कि आधुनिक राष्ट्र रचे तो गए हैं, पर आमतौर पर शून्य से नहीं, पुरानी जातीय सामग्री से।
राई (rai)	याप द्वीप पर धन के रूप में इस्तेमाल होने वाली बड़ी तराशी हुई चूना-पत्थर की चकतियाँ।

समय-रेखा

तारीख़	घटना
लगभग 1740	ह्यूम तर्क देते हैं कि संपत्ति, वादे और पैसा प्रकृति पर नहीं, चलन पर टिके हैं।

तारीख़	घटना
1895	दुर्खीम की द रूल्स ऑफ़ सोशियोलॉजिकल मेथड छपती है: सामाजिक तथ्य चीज़ें हैं।
1897	सैलोमन बनाम ए सैलोमन एंड कंपनी लिमिटेड — हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स अलग कॉरपोरेट व्यक्तित्व स्थापित करता है।
1905	क्नाप की स्टेट थ्योरी ऑफ़ मनी: पैसा कानून की पैदाइश है।
1932	न्यूयॉर्क फ़ेड तिजोरी में लेबल बदलकर फ़्रांस के बैंक को सोना "हस्तांतरित" करता है।
1945	रैडफ़ोर्ड युद्धबंदी शिविर में सिगरेट को मुद्रा बनते हुए पर अपना अध्ययन छापते हैं। नूरेम्बर्ग मुक़दमे शुरू होते हैं।
1946	राडब्रुख का निबंध "वैधानिक अन्याय और विधि से ऊपर का विधि-तत्व" छपता है।
10 दिसंबर 1948	मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा अपनाई जाती है: 48 पक्ष में, कोई विरोध में नहीं, 8 अनुपस्थित।
1955 / 1962	कार्यकारी कथनों पर ऑस्टिन के व्याख्यान, जो हाउ टु डू थिंग्स विद वर्ड्स के रूप में छपते हैं।
1960	शेलिंग की द स्ट्रैटेजी ऑफ़ कॉन्फ़्लिक्ट केंद्र-बिंदु का विचार लाती है।
1966	बर्गर और लकमैन, द सोशल कंस्ट्रक्शन ऑफ़ रियलिटी।
1969	लुईस, कन्वेंशन: यक़ीन के बिना तालमेल।
1 मई – 17 नवंबर 1970	आयरलैंड में बैंक बंदी। मुद्रा-आपूर्ति का करीब 85 प्रतिशत पहुँच से बाहर; अर्थव्यवस्था चेक और उधारी की पर्चियों पर चलती रहती है।
1977	मैकी, एथिक्स: इन्वेंटिंग राइट एंड रॉन्ग।
1983	एंडरसन की इमैजिन्ड कम्युनिटीज़; हॉब्सबॉम और रेंजर की द इन्वेंशन ऑफ़ ट्रेडिशन।
जून 1991 – अप्रैल 1992	यूगोस्लाविया बिखरता है। खुद को "यूगोस्लाव" बताने वाले पहले ही घटकर करीब 3 प्रतिशत रह गए थे।
1995	सर्ल, द कंस्ट्रक्शन ऑफ़ सोशल रियलिटी: संदर्भ C में X को Y गिना जाता है।
1999	हैकिंग, द सोशल कंस्ट्रक्शन ऑफ़ व्हॉट?: अंतःक्रियात्मक किस्में और लूपिंग असर।
नवंबर 2008	ज़िम्बाब्वे की सालाना महँगाई अनुमानित 89.7 सेक्सटिलियन प्रतिशत पर पहुँचती है।
2009	ज़िम्बाब्वे अपनी मुद्रा छोड़कर डॉलर अपनाता है। बिटकॉइन शुरू होता है।
2011 / 2014	सेपिएंस हिब्रू में, फिर अंग्रेज़ी में छपती है।
2015	द न्यू अटलांटिस में सेक्स्टन की समीक्षा; होमो डेउस हिब्रू में छपती है (अंग्रेज़ी 2016)।
2017	सेपिएंस पर हालपाइक की समीक्षा।

तारीख़	घटना
2019–2022	व्हाइटहाउस और साथी नेचर में पाते हैं कि नैतिकता सिखाने वाले देवता सामाजिक जटिलता के पीछे आते हैं; पद्धतिगत आलोचना के बाद शोध-पत्र वापस लिया जाता है; लेखकों का सुधरा हुआ पुनर्विश्लेषण उसी दिशा का नतीजा देता है।

स्रोत

अध्ययन की गई किताब

- Yuval Noah Harari, **Sapiens: A Brief History of Humankind** (हिब्रू 2011; अंग्रेज़ी, Harvill Secker, 2014)। वाक्य अध्याय 2, "The Tree of Knowledge" में है, करीब पृष्ठ 31 पर; काल्पनिक व्यवस्था और वस्तुपरक / व्यक्तिपरक / अंतर-व्यक्तिपरक का भेद अध्याय 6, "Building Pyramids" में विकसित होता है।
- Yuval Noah Harari, **Homo Deus: A Brief History of Tomorrow** (2015), जहाँ यह तर्क मानवतावाद और डेटा तक बढ़ाया गया है।

सामाजिक सत्ता-मीमांसा और दर्शन

- John R. Searle, **The Construction of Social Reality** (Free Press, 1995), तथा "Social Ontology: Some Basic Principles", **Anthropological Theory** (2006)।
- David Lewis, **Convention: A Philosophical Study** (Harvard, 1969); Thomas Schelling, **The Strategy of Conflict** (1960)।
- J. L. Austin, **How to Do Things with Words** (Oxford, 1962)।
- J. L. Mackie, **Ethics: Inventing Right and Wrong** (Penguin, 1977); Stanford Encyclopedia of Philosophy, "Moral Anti-Realism: Mackie's Arguments for the Moral Error Theory"।
- Ian Hacking, **The Social Construction of What?** (Harvard, 1999)।

समाजशास्त्र और मानवविज्ञान

- Émile Durkheim, **The Rules of Sociological Method** (1895)।
- Peter Berger and Thomas Luckmann, **The Social Construction of Reality** (1966)।
- C. R. Hallpike, "Review of Yuval Harari's **Sapiens**", **New English Review**, दिसंबर 2017 — विश्वास बनाम चलन वाली आपत्ति और "रबर की कील" वाली पंक्ति का स्रोत।
- John Sexton, "A Reductionist History of Humankind", **The New Atlantis** अंक 47 (2015), पृष्ठ 109–120।

राष्ट्र

- Benedict Anderson, **Imagined Communities** (Verso, 1983), जिसमें गेलनर की वह आलोचना भी है कि वे गढ़ने को झूठ के बराबर मान लेते हैं।
- Ernest Gellner, **Nations and Nationalism** (1983); Eric Hobsbawm and Terence Ranger (सं.), **The Invention of Tradition** (1983); Anthony D. Smith, **Nationalism and Modernism** (1998)।
- यूगोस्लाव आत्म-पहचान के जनगणना आँकड़े, 1981 और 1991; जून 1991 – अप्रैल 1992 के विघटन के मानक विवरण।

पैसा

- Georg Friedrich Knapp, **The State Theory of Money** (1905; अंग्रेज़ी 1924)।
- R. A. Radford, "The Economic Organisation of a P.O.W. Camp", **Economica** 12 (1945), पृष्ठ 189–201।
- Antoin E. Murphy, "Money in an Economy without Banks: The Case of Ireland", तथा 1 मई – 17 नवंबर 1970 की बंदी पर बाद के विश्लेषण; Bank of England, "The Cheque Republic: money in a modern economy with no banks" (2016)।

- Milton Friedman, **Money Mischief** (1992), अध्याय 1–2, याप के पत्थरों और 1932 के फ़ेडरल रिज़र्व गोल्ड इयरमार्किंग पर।
- Steve H. Hanke and Alex K. F. Kwok, “On the Measurement of Zimbabwe’s Hyperinflation”, **Cato Journal** (2009)।

कानून

- **Salomon v A Salomon & Co Ltd** [1897] AC 22 (HL)।
- Gustav Radbruch, “Gesetzliches Unrecht und übergesetzliches Recht” (1946), अंग्रेज़ी में “Statutory Lawlessness and Supra-Statutory Law”।
- संयुक्त राष्ट्र महासभा प्रस्ताव 217 (III), 10 दिसंबर 1948, और दर्ज किया गया मतदान।

मनोविज्ञान और धर्म

- Michael Tomasello, **Why We Cooperate** (MIT Press, 2009)।
- Hannes Rakoczy, Felix Warneken and Michael Tomasello, “The Sources of Normativity: Young Children’s Awareness of the Normative Structure of Games”, **Developmental Psychology** (2008)।
- Harvey Whitehouse et al., “Complex Societies Precede Moralizing Gods Throughout World History”, **Nature** (2019) — Beheim et al. के बाद 2021 में वापस लिया गया; लेखकों का बाद का पुनर्विश्लेषण देखें, **Religion, Brain & Behavior** (2022)।
- Patrik Lindenfors, Andreas Wartel and Johan Lind, “‘Dunbar’s number’ deconstructed”, **Biology Letters** 17(5) (2021) — 2–520 वाले विश्वास-अंतराल का स्रोत।

द लिविंग आर्काइव — एक-वाक्य अध्ययन, अंक 02, श्रृंखला मशहूर किताबें, टुकड़ा-टुकड़ा करके से।

लेखन और संकलन: लवप्रीत सिंह · misterlove.in/books/sapiens/ · अगस्त 2026।

तरीक़ा: एक वाक्य; उसके नीचे की हर मान्यता को नाम और अंक; हमला करने से पहले तर्क का दो बार स्टीलमैन; हर विषय-क्षेत्र को अपना फ़ैसला सुनाने की छूट; और पूरी बात की परीक्षा उन घटनाओं पर जो सचमुच घटीं। जहाँ लेखक सही हैं, वहाँ अंकतालिका यही कहती है।

सेपिएंस से लिए गए उद्धरण छोटे हैं और आलोचना तथा समीक्षा के लिए इस्तेमाल किए गए हैं। सारी गलतियाँ संकलनकर्ता की हैं।